सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

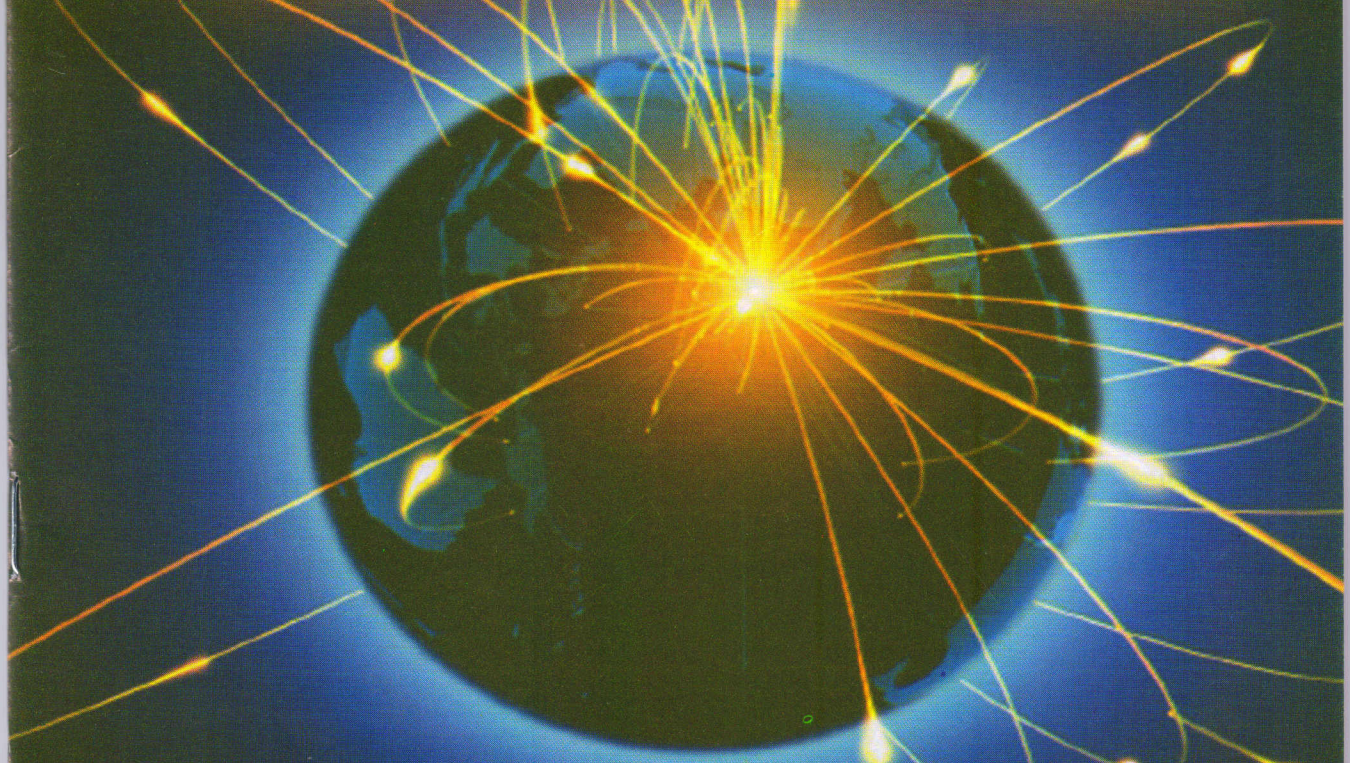

वर्ष 47

अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर
2017

अंक 2

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

कबीर दर्शन

लेखक—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी

(दसवां संस्करण)

सद्गुरु कबीर के जीवन, दर्शन, कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व को समझने के लिए एक मानक ग्रंथ । इसके प्रथम अध्याय बीजक मंथन में कबीर साहेब की मौलिक वाणी 'बीजक' के आधार पर पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विषयों का विशद विवेचन तथा अनेक शंकाओं का समाधान है । दूसरे अध्याय में पारखी संतों का इतिहास तथा ग्रंथ परिचय है । तीसरे अध्याय में पारख सिद्धांत का तात्त्विक एवं वैज्ञानिक चित्रण है । चौथे अध्याय में कबीर दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन है । पांचवें अध्याय में कबीर तथा कबीरपंथ से प्रभावित संतों का परिचय है । छठें अध्याय में कबीरपंथ का इतिहास है तथा सातवें अध्याय उपसंहार में समन्वयात्मक रूप में सत्य तथा जीवन के अंतिम लक्ष्य का सारगर्भित चित्रण है । कबीर साहेब पर शोध करने वाले तथा सामान्य लोगों के लिए यह अनुपम ग्रंथ है । पृष्ठ 783, मूल्य 215 रु०।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं0 अवश्य लिखें।

एक प्रति 13.00 रुपये, वार्षिक 50.00 रुपये, आजीवन 1250.00 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

इलाहाबाद–211011

फोन : (0532) 2090366, 7376786230

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क—50.00
एक प्रति—13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

कविता	लेखक	पृष्ठ
शांत हो जाओ स्वत: में		1
धर्मेन्द्र मौर्य के दोहे	धर्मेन्द्र मौर्य	10
मानवता को अपनाओ	श्री सिद्धादास 'प्रेमी'	14
कर लो सच्चा तीर्थ	डॉ. अमरनाथ सिंह	17
जन्नत	श्री मधुप पाण्डेय	25
अनूठा सच	राधाकृष्ण कुशवाहा	26
मौत का मातम	श्री प्यारे लाल साहू	48

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 12 परमार्थ पथ / 21
बीजक चिंतन / 29

लेख

लोक जीवन में संत कबीर	श्री धर्मदास	6
साहब, बन्दगी!	श्री पी.के. द्विवेदी	11
अहंकार पतन का कारण है	श्रीमती रजनीश	15
युगद्रष्टा क्रांतिकारी कवि संत कबीर	वशिष्ठ तिवारी	18
घर आ जा परदेशी	सौम्येन्द्र दास	19
अच्छाई से उत्थान होता है बुराई से पतन	डॉ. रणजीत सिंह	27
मानसिक तनाव के शमन में	डॉ. श्री ओ.पी. द्विवेदी	32
मोर बहुरिया को धनिया नाऊ	धर्मेन्द्र दास	35

लघुकथा

कचरा	श्री भावसिंह हिरवानी	10

कहानी

घूंघट के पट खोल...	उपासना सियाग	23

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

(प्रथम खण्ड : बीसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : अठारहवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 250 रु०, द्वितीय खण्ड 250 रु०।

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

श्री निर्मल साहेब कृत
न्यायनामा

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम की
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir
The Path of Salvation

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच
कर्मयोगी कबीर (उपन्यास)

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

वर्ष 47 **अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर** **अंक 2**

2017

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

पारख प्रकाश

जिभ्या कर्म कछोतरी, जो तीनों बस होय।
राजा परजा जमपुरी, गंजि सकै नहिं कोय॥ कबीर साखी॥

वर्ष 47] इलाहाबाद, क्वार, वि. सं. 2074, अक्टूबर 2017, सत्कबीराब्द 619 [अंक 2

शांत हो जाओ स्वतः में

जिसका परिचय है पुराना, वह मलिनता देह का है।
काम का उद्वेग, लोभ, औ क्रोध, धन जन गेह का है॥

राग द्वेष प्रपंच के विस्तार, में डूबे घने हो।
कलह, धन की कल्पना, औ शोक चिंता में सने हो॥

ताप में तपते रहे, संसार-भट्ठी में झुलसते।
क्षणिक स्वप्निल मोह-माया, के बवंडर में उलझते॥

देह नर औ नारि की, मल पिंड है जो ताप कारे।
उन्हीं में उलझे रहे, सहते रहे संताप सारे॥

देह बुद्धी से उबरकर, आत्मबुद्धी में न आये।
विषय भोगों के लिए, तपते व अन्यों को तपाये॥

क्या इसी गंदी गली में, और चलने का इरादा?
तुम स्वयं को भूलकर, संसार की है लाद लादा॥

बैठकर सत्संग में, खुद आप अपने को विचारो।
कौन हो तुम क्या तुम्हारा, समझकर खुद को सम्हारो॥

जो मिला है छूटने के वास्ते है, याद कर लो।
छूट जो जाये, पकड़ना क्या भला है, दाद कर लो॥

है तुम्हारा देश निर्मल, शुद्ध चेतन आत्मा का।
शांति का सागर वही, निज रूप है परमात्मा का॥

क्यों न कीचड़ से निकलकर, आत्मा के धाम आओ।
ताप से हो मुक्त, आतमराम में विश्राम पाओ॥

दृश्य की मिथ्या चमक में, मन लगाकर भटकते हो।
जो तुम्हारा है नहीं, उसमें चिपककर अटकते हो॥

दुक्ख है परिणाम जिसका, काम वह क्यों किया जाये।
अक्लमंदी की सिफ़त क्या, दुक्ख में यदि जिया जाये॥

कब सम्हालोगे स्वयं को, याद कर लो रूप अपना।
भागता सब जा रहा है, जिंदगी का दृश्य सपना॥

मोह है परमाद मन का, इसी से जो निकल जाये।
वही आतमराम में हो थिर, अचल विश्राम पाये॥

जब सभी कुछ छूटना है, मोह किससे किया जाये।
सब अनात्म अनित्य है, अपनत्व कर क्या लिया जाये॥

स्व असंग अकेल है, प्रपंच-शून्य स्वरूप अपना।
शांत हो जाओ स्वतः में, छोड़कर संसार-सपना॥

ध्यान क्या और क्यों?

दुनिया के सभी मत-पंथ-संप्रदाय के सच्चे संत-साधक ध्यानाभ्यासी रहे हैं और आज भी हैं। कितने गृहस्थ भक्त-सज्जन भी रोज ध्यान करते हैं। ध्यान हर उस व्यक्ति के लिए आवश्यक है जो चिंता-तनाव-उद्वेग रहित शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहता है। कोई चाहे कुछ भी पा जाये और बन जाये ध्यान के बिना वह मानसिक पीड़ा से छुटकारा नहीं पा सकता। निरंतर के ध्यानाभ्यास से आत्मोन्नति तो होगी ही, तन-मन के रोग घटेंगे, मानसिक शांति की प्राप्ति होगी, बिगड़ी आदत एवं स्वभाव सुधरेंगे तथा जीवन की हर दिशा कल्याणकारी होगी।

प्रश्न होता है ध्यान क्या है और ध्यान किसे कहते हैं? ध्यान के बारे में अनेक संतों-साधकों ने बहुत कुछ बहुत सुंदर ढंग से लिखा और कहा है जिन्हें पढ़-सुन कर ध्यान के बारे में बहुत कुछ जाना-समझा जा सकता है। हां, अनुभव अभ्यास से होगा, मात्र पढ़ने-सुनने से नहीं। ध्यान क्या है, इस संबंध में यहां सरल ढंग से वर्णन किया जा रहा है।

ध्यान क्या है यह जानने के पहले हम यह जान लें कि ध्यान करने के लिए और ध्यान में पूरी सफलता पाने के लिए ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। ध्यान रखने का अर्थ है जीवन का हर क्रियाकलाप पूर्ण जागरूकता और सावधानीपूर्वक करना। तन-मन-वचन से ऐसी कोई क्रिया-हरकत न करना जिससे अपना मन चंचल, विकारी एवं उत्तेजित हो और दूसरों को पीड़ा मिले। जो सोने-जागने, उठने-बैठने, चलने-फिरने, खाने-पीने, सोचने-विचारने एवं बात-व्यवहार करने में ध्यान नहीं रख पाता, जिसके जीवन का सब कुछ असंयमित है, जिसका अपने तन-मन-वचन पर नियंत्रण नहीं है वह व्यक्ति ध्यानाभ्यास में कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। ध्यान रखकर ही ध्यान किया जा सकता है। इस प्रकार ध्यान रखने का अर्थ हुआ—सब समय जागरूक-सावधान रहना, जो करना होशपूर्वक-विवेकपूर्वक करना।

जागरूकता-सावधानी के पश्चात ध्यान का प्रारंभिक स्वरूप और व्यावहारिक अर्थ है मन की एकाग्रता। मन की एकाग्रता के बिना न तो किसी काम को सही ढंग से संपादित किया जा सकता है, न किसी दिशा में सफलता हासिल की जा सकती है और न दुनिया के किसी भोग का आनंद लिया जा सकता है। चंचल और अव्यवस्थित मन से काम करने पर काम बोझ बन जाता है, समय पर पूरा नहीं हो पाता और तन-मन दोनों बहुत जल्दी थक जाते हैं। इसके विपरीत एकाग्र और शांत मन से काम करने पर काम बोझ नहीं बनता, बड़े और कठिन काम भी हलके और सरल जान पड़ते हैं। समय पर काम पूरा हो जाता है। समय कब गुजर गया पता नहीं चलता और तन-मन दोनों स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं। वस्तुतः मन की चंचलता में ही सारा दुख है और एकाग्रता में सुख। मन की चंचलता नरक बनाती है और एकाग्रता स्वर्ग। सद्गुरु कबीर का महावाक्य है—होय बिहिश्त जो चित न डोलावै। अर्थात यदि मनुष्य अपने चित्त (मन) को चंचल न करे तो उसे आज और अभी स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति हो जाये।

मन की एकाग्रता में कितनी शक्ति है इसको एक उदाहरण के माध्यम से हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। रोज सुबह सूर्य पूर्व में उगता है और उसकी किरणें धरती पर पहुंचती हैं और हम सूर्य के प्रकाश में पूरा दिन अपना सारा कार्य-व्यवहार बड़ी सुगमता से करते हैं। परंतु हमने कभी कहीं नहीं देखा-सुना कि सूर्य की किरणों से कहीं आग लगी हो। गरमी के दिनों में दोपहर के समय प्रचण्ड सूर्य-किरणें प्राणी और वनस्पति जगत सबको झुलसा देती हैं, परंतु कहीं आग नहीं लगातीं। लेकिन उन्हीं सूर्य-किरणों को जब मैग्नीफाइंग शीशा के द्वारा एक बिन्दु पर केंद्रित कर दिया जाता है तब थोड़ी देर में आग लग जाती है। वैसे ही जब हमारा मन

चंचल होकर विभिन्न दिशाओं में बिखरा होता है तब हम कोई भी काम सही ढंग से नहीं कर पाते और हमें किसी भी दिशा में पूरी सफलता नहीं मिल पाती। लेकिन जब मन को सब तरफ से समेट कर किसी एक दिशा में केन्द्रित-एकाग्र कर लेते हैं तब संबंधित क्षेत्र में जल्दी और पूरी सफलता मिल जाती है। आज दुनिया में कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान विभिन्न क्षेत्रों में जो आश्चर्यजनक उन्नति दिखाई दे रही है वह मन की एकाग्रता का ही परिणाम है।

इस प्रकार ध्यान का व्यावहारिक रूप है मन की एकाग्रता। इसके लिए आवश्यक है जीवन-व्यवहार के सारे आवश्यक कर्मों को लोभ-मोह से रहित होकर निष्काम भावपूर्वक करना। जो करना सेवा और कर्तव्य समझकर करना, परंतु मन को राग-द्वेष, मोह-वैर से रहित रखना। एकाग्र का अर्थ है—एक-अग्र—आगे एक विषय का रहना। मन के सामने सदैव किसी एक शुभ विषय को रखना। जब जो काम करना मन को उसी में केन्द्रित करना, और सब कुछ को भूल जाना। एक समय में एक काम करना। खाने बैठे मन को उसी में केन्द्रित कर दें। देखेंगे भोजन में अद्‌भुत रस, अद्‌भुत स्वाद, अद्‌भुत आनंद आने लगेगा। पढ़ने बैठे, मन को समेटकर उसी में केन्द्रित कर दें, नये-नये अर्थ खुलते जायेंगे, आनंद तो आयेगा ही, जो पढ़ेंगे बहुत कुछ याद रहेगा। एकाग्र-शांत मन से जो कुछ भी करेंगे वही पूजा बन जायेगा। फिर सद्‌गुरु कबीर की यह पंक्ति जीवन में चरितार्थ हो जायेगी—"जहँ जहँ डोलूँ सो परिकरमा, जो कुछ करूँ सो पूजा।"

ध्यान है अपने मन की गाड़ी को न्यूट्रल गेयर में रखना। आप किसी दोपहिया या चार पहिया वाहन को चालू करें और उसे न्यूट्रल गेयर में रखें। वह न आगे जायेगा न पीछे जायेगा। इंजन से चालू होने की आवाज तो आयेगी, परंतु वाहन जहां के तहां खड़ा रहेगा। इसी प्रकार मन की दशा है। न भूत की बात सोचें न भविष्य की, न कुछ याद करें न चिंता-कल्पना करें। पूर्ण जाग्रत मन, किन्तु चिंता-कल्पना से रहित, यही ध्यान है। जरा सोचें, मन क्यों भागता है और दुखी, संतापित, पीड़ित रहता है? या तो भूत की बीती बातों को याद करके या भविष्य की कल्पना कर-करके। दोनों को हटा दें तो दुख का कोई कारण नहीं रहेगा। रही बात, शारीरिक रोग-व्याधि या जीवन-निर्वाह की, तो उसके लिए उचित संयम-परहेज पूर्वक औषध का सेवन करते रहना है और प्राप्त समय, शक्ति एवं योग्यता के अनुसार परिश्रम करते रहना है। चिंता और कल्पना से न किसी समस्या का समाधान होता है और न शारीरिक-मानसिक रोग दूर होते हैं, बल्कि समस्या उलझ जाती है और रोग बढ़ जाते हैं।

जब पूर्ण जागृत मन न भूत की स्मृति में डूबा होता है और न भविष्य की कल्पना में तब हम वर्तमान में होते हैं और वर्तमान में होना ही ध्यान है। जब मन भूत की स्मृति में होता है तब दुनिया हमारे सामने होती है और जब मन भविष्य की कल्पना करता है तब भी दुनिया हमारे सामने होती है। स्मृति और कल्पना में जो भी आयेंगे या मन जिनकी भी स्मृति और कल्पना करेगा वह दुनियवी प्राणी-पदार्थ, भोग-वस्तुएं ही होंगे। इस प्रकार जब तक स्मृति और कल्पना है, भूत और भविष्य है तब तक दुनिया सामने है। किन्तु जब न स्मृति एवं कल्पना है और न भूत तथा भविष्य है तब केवल वर्तमान है। हम अपने आप में हैं। वर्तमान में होने का अर्थ है अपने आप में होना। हर व्यक्ति का अपना आपा, अपना चेतन स्वरूप केवल वर्तमान है। वह न कभी भूत होता है और न भविष्य होता है।

ध्यान वर्तमान में जीना है। वर्तमान में जीने वाला सदैव शांत, संतुष्ट और प्रसन्न रहता है। व्यावहारिक जीवन में भी देखा जा सकता है कि जो आदमी जो नहीं मिला उसकी चिंता नहीं करता, आगे क्या मिलेगा या मिलने वाला है उसकी कल्पना नहीं करता, किन्तु वर्तमान में जो प्राप्त है उसमें संतुष्ट रहता है और उसका सही उपयोग करता है वह आशा-तृष्णा से मुक्त होकर शांत-सुखी जीवन जीता है और हर हाल में प्रसन्न रहता है। इसीलिए सद्‌गुरु श्री पूरण साहेब जी ने कहा—

"वर्तमान में बरतो भाई। भूत भविष्य सब देहु बहाई।" जिस व्यक्ति का मन भूत की स्मृति या भविष्य की कल्पना में डूबा रहता है वह कभी वर्तमान का सही उपयोग नहीं कर पाता और दुख-निराशा की धारा में बहता रहता है।

भूत-भविष्य की स्मृति-कल्पना में डूबे रहने का अर्थ है अपने से दूर चले जाना और अपने से दूर चले जाने का अर्थ है भव-दुख की धारा में बहते रहना। गाढ़ी नींद में जब स्मृति-कल्पना कुछ नहीं रहती तब कैसी प्रगाढ़ शांति रहती है यह सबका अपना सहज अनुभव है। इसी प्रकार जागृत अवस्था में जब मन भूत-भविष्य की स्मृति-कल्पना को छोड़कर केवल वर्तमान में, अपने आप में हो जाता है उस शांति-सुख का अनुभव ध्यानाभ्यासी साधक ही कर सकता है।

ध्यान है अपने में होना, अपने में लौट आना। नदी के दोनों तट शुरू से आखिर तक अलग-अलग ही रहते हैं। दोनों कभी एक हो नहीं सकते। एक होने का अर्थ है नदी का समाप्त हो जाना। नदी के दोनों तटों को जोड़ने वाला पुल होता है। पुल तोड़ देने पर दोनों तट अलग-अलग ही रह जाते हैं। इसी प्रकार मन पुल है जो जीव-जगत दोनों को जोड़ने वाला है। मन ही जगत को जीव के सामने उपस्थित करता रहता है। मन न हो तो जैसे जीव और जगत अलग-अलग हैं वैसे अलग-अलग ही रह जायेंगे। इसका प्रत्यक्ष अनुभव रोज गाढ़ी नींद में सबको होता है। गाढ़ी नींद में जब मन शांत रहता है, कुछ भी याद, चिंतन, संकल्प, कल्पना नहीं करता तब सब कुछ अपनी जगह पर यथावत रहते हुए हमारा उस समय किसी से कुछ संबंध नहीं रहता। हम अपने आप में होते हैं। इसीलिए छांदोग्य उपनिषद् में नींद को सुषुप्ति कहा गया है और सुषुप्ति का अर्थ अपने को पाना बताया गया है—स्व-अपीति।

इसी प्रकार जब जागृत अवस्था में अभ्यास द्वारा मन को शांत कर दिया जाता है, मन में कोई यादगीरी, चिंतन, संकल्प, कल्पना आदि नहीं रह जाते तब जगत अपने आप में होते हुए भी हमारे लिए नहीं रह जाता। हम अपने आप में होते हैं और यही ध्यान है। इसी को सद्गुरु कबीर ने "सुख दुख से इक परे परम पद" कहा है। दुनिया के सारे सुख-दुख याद, चिंतन, संकल्प, कल्पना में ही प्रतीत होते हैं। अपना चेतन स्वरूप सुख-दुख से परे है। इसीलिए आत्मनिष्ठ ज्ञानी संत-साधक को दुनियवी सुख-दुख प्रभावित नहीं करते। वह दोनों अवस्थाओं में सहज-समता भाव में जीवन जीता है। दुख के अवसर आने पर वह उद्विग्न नहीं होता है और न लौकिक सुख की कोई आकांक्षा, कामना करता है। क्योंकि ध्यान उसके जीवन में उतर गया होता है। वह सब समय अपने आत्मभाव में जीता है। ऐसे पुरुष को गीता की भाषा में स्थितप्रज्ञ कहा गया है।

ध्यान ऊर्जा का संचयन करना है। हम जो कुछ भी करते हैं, यहां तक सोचना-विचारना भी, हमारी ऊर्जा हर समय बाहर प्रवाहित होती रहती है एवं खर्च होती रहती है। जीवन के आवश्यक कार्य-व्यवहार, निर्वाह धंधा के कामों में ऊर्जा की खपत होना तो समझ में आता है, परंतु निर्वाह-धंधा, सेवा-साधना के अतिरिक्त अनावश्यक एवं अनर्थक कामों में ऊर्जा की खपत करना किसी भी प्रकार से समझदारी नहीं है। हकीकत तो यह है कि आवश्यक और सार्थक कार्यों में हमारी ऊर्जा की जितनी खपत होती है उससे कई गुणा ज्यादा अनावश्यक और अनर्थक कार्यों में खपत होती है। जब मन प्रेम, दया, क्षमा, संतोष, ज्ञान, भक्ति, विवेक-विचार आदि के चिंतन में डूबा रहता है उस समय ऊर्जा की जो खपत होती है उससे अनेक गुण ज्यादा वैर, विरोध, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, असंतोष आदि विकारी भावों के आने पर खपत होती है। यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि मन में अत्यधिक काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चिंता, तनाव आदि विकारी भावों के आने पर तन-मन दोनों बहुत जल्दी शिथिल और क्लान्त हो जाते हैं।

जीवन-निर्वाहिक धंधा एवं सेवा-साधना के अतिरिक्त समय में यदि ध्यान का अभ्यास किया जाये

तो हमारे तन-मन की जो ऊर्जा बाहर अनावश्यक रूप से प्रवाहित होती रहती है, वह बंद हो जायेगा और ऊर्जा का संचयन होने लगेगा। वह संचित ऊर्जा अनेक क्षेत्रों में विकास, उन्नति एवं सफलता का कारण बनेगी।

ध्यान है मन का पूर्ण मौन-शांत हो जाना, कुछ न करना। मन के पूर्ण मौन-शांत हो जाने, कुछ न करने का अर्थ है—कुछ भी चिंतन, संकल्प न करना। जिसके लिए महर्षि कपिल ने कहा है—ध्यानं निर्विषयं मनः। अर्थात मन का निर्विषय हो जाना ध्यान है। निर्विषय होने का अर्थ है—पदार्थ-पार हो जाना। अर्थात संकल्प-मुक्त हो जाना। बिना कुछ पदार्थ-वस्तु का आधार लिये मन न कुछ याद कर सकता है, न सोच सकता है और न चिंतन-मनन कर सकता है। जब कुछ याद, सोच, चिंतन, मनन नहीं है तब मन का सारा व्यापार रुक गया, मन मौन हो गया यही वास्तविक ध्यान है। इसमें न कुछ पाना है, न देखना है और न किसी में मिलना है। कुछ पाने, देखने या किसी में मिलने का अर्थ है मन के व्यापार में, दृश्य-विषय में ही उलझ जाना। सारा देखना, पाना, मिलना मन द्वारा ही होता है और जब मन ही मौन-शांत हो गया तब कुछ पाना, देखना, मिलना कहां रह गया। वहां तो सारे प्रपंचों का उपशमन होकर शिवत्व का उद्घाटन हो जाता है। इसी के लिए माण्डूक्य उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—प्रपंचोपशमं शांतं शिवमद्वैतम्। कठोपनिषद् के ऋषि ने इसी को परमगति कहा है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्

अर्थात जब मन के सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियां अवतिष्ठित-शांत हो जाती हैं और बुद्धि भी कुछ नहीं सोचती तब इसी को परम गति कहा जाता है।

जब मन मौन हो गया, कुछ देखना, सुनना, पाना, मिलना नहीं रह गया, तब शेष रह गया अपने आप शुद्ध चेतन-आत्म तत्त्व। इसी के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—है जैसा रहे तैसा।

ध्यान है कुछ न करना। कुछ न करने का अर्थ हाथ-पैर बटोरकर आलसी निकम्मा बनकर बैठ जाना नहीं है। शरीर से अपनी श्रेणी, शक्ति, योग्यता के अनुसार हर आदमी को श्रमशील-कर्मपरायण होना चाहिए। बिना कर्म के कोई आदमी रह नहीं सकता। हां, सावधानी यह रखना है कि आवश्यक कर्तव्यों कर्मों को करते हुए मन कहीं आसक्त न होने पाये! मन सारी अहंता-ममता से रहित निष्काम रहे। फिर कर्म बंधन का कारण नहीं बनेगा। सद्गुरु कबीर का यह निर्देश सदैव स्मरण में रखे—कर्म करे औ रहे अकर्मी। अकर्मी होने का अर्थ कर्महीन होना नहीं है, किन्तु निष्काम एवं अनासक्त होना है।

ऊपर जो कहा गया है कुछ न करना ध्यान है, उसका अर्थ है मन का कुछ न करना। जिसके लिए पूर्व में कहा जा चुका है मन का पूर्ण मौन एवं संकल्पमुक्त हो जाना। जब हम तन-मन-वचन से कुछ करते हैं तब दुनिया से जुड़ते हैं और जब तीनों अपनी सारी क्रिया छोड़कर पूर्ण शांत हो जाते हैं तब अपने से जुड़ते हैं, अपने में होते हैं।

हमारे जीवन के चार स्तर या तल हैं—शरीर, मन, हृदय और चेतना। शरीर से हम क्रिया-कर्म करते हैं, मन से चिंतन-मनन करते हैं, हृदय से भावना, प्रेम-श्रद्धा करते हैं, परंतु चेतना के स्तर पर हम कुछ करते नहीं हैं, सिर्फ होते हैं। होना हमारी वास्तविकता है। एक दिन शरीर, मन, हृदय तो छूट जाते हैं, किन्तु चेतना तो हमारा स्वरूप है, अस्तित्व है, वह हमसे कैसे छूट सकती है। इस अपनी चेतना में होना ही ध्यान है। इसको महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में 'स्वरूपेऽवस्थानम्' तथा 'स्वरूपप्रतिष्ठा' कहा है। इसी के लिए सद्गुरु कबीर ने 'तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय' कहा है। अपने से जुड़ना, अपने में लौटना, अपने में होना, यही वास्तविक ध्यान है और यही ध्यान का फल है।

–धर्मेन्द्र दास

लोक जीवन में संत कबीर

लेखक—श्री धर्मदास

(गतांक से आगे)

निर्गुण–5

सुतला मैं रहलीं ये भौरा, पियवा संग रे सेजिया
सपना में देखली ये भौरा, पियवा गेइलन रे चोरिया
जे हम जनती ये भौरा, पियवा जइहन रे चोरिया
अस बान्ध बानहतिं ये भौरा, रेशम के रे डोरिया
रेशम के डोरिया ये भौरा, टूटी फाटी रे जइहैं
प्रेम के बन्धमा ये भौरा, कबहुं नहिं रे टूटी हैं
दास कबीर ये भौरा गावइ निरगुनिया,
पियवा करनमा हम होइबै रे योगिनिया

मैं अपने प्रियतम के संग सेज पर सो रही थी। मैंने एक स्वप्न देखा कि पिया चोरी–चोरी मुझे छोड़कर चले गये हैं। यदि पहले मैं जान पाती कि प्रियतम मुझसे चोरी–छिपे एक दिन चले जायेंगे तो उन्हें रेशम की डोरी से खूब कसकर बांधे रखती। लेकिन रेशम की डोरी भी एक दिन टूट–फूट जायेगी। प्रेम का बन्धन कभी नहीं टूटता।

कबीरदास यह निर्गुण गाकर कहते हैं कि पिया (परम तत्त्व) को पाने के लिए ही हमने वैराग्य (योगिनी रूप) धारण किया है। निर्गुण में यहां 'भौंरा' बार–बार आया है जो दर्शाता है कि भौंरा फूल पर टिककर नहीं बैठता। आतमराम भी बराबर शरीर बदलता रहता है। कोई–काई गायक 'भौरा' के स्थान पर 'नन्दी' का प्रयोग करते हैं।

निर्गुण–6

जेहि बाटे पियवा हो गेलन, दुभिया रे जनमीये हो गेलइ,
कि अहो मोरि रामा,
दुभिया रे जनमिये बिजूबन लागे हय रे की
अजहु न अइलन पियवा, पतियो ना भेजौले रामा,
कि अहो मोरि रामा,
बटिया र जोहइते दिनमा बितो है रे की
एक तो अन्धेरी राति, दूजे न संग साथी,
कि अहो मोरि रामा,
रहिया ताकिये लगोहइ भयावन रे की
नैहरा ना भाई बाबू, ससुरो ना स्वामी नाथ,
कि अहो मोरि रामा,
केकरा के ओहरिया दिवस गमइवै रे की,
कि अहो मोरि रामा

जिस बाट (पगडंडी) से पिया गये, उस पर दूब–घास जम गये हैं। हे मेरे राम! दूब जमकर बीजूवन (झाड़ झंखाड़) सा घना दीखता है।

दूब एक मुलायम घास होती है। पगडंडी पर दूब जमना और बड़ा होकर बड़े–बड़े पौधों का जंगल–सा लगने का तात्पर्य है उस पगडंडी पर बहुत अधिक समय तक न कोई गया और न आया। अर्थात काफी लम्बा समय बीत गया। आज तक पिया लौटकर नहीं आये, न तो वे कोई पतिया पत्र ही भेजे। बाट जोहते (राह पर नजर गड़ाये) ही दिन कटता है। एक तो अंधियारी रात है, दूजे कोई संगी–साथी भी नहीं है। हे भगवान्! राह ताकते रहना डरावना लगता है। नैहर में भाई–बाप नहीं और ससुराल में स्वामी का सहारा भी अब नहीं रहा। हे राम! किसके ओहारी–देहरी का ओट लेकर दिवस–जीवन शेष करूंगी।

निर्गुण–7

इहे पार गंगा बहे उहे पार जमुना हो,
अरे सखिया हो
बीचवा परेला बलुआ रेतन ये राम
उहे पार बालू–रेतवा ये रामा,
पिया लेके सुतल रहली,
अरे सखिया हो
नगवा डंसेला पियवा के आंगुरी ये राम
नगवा के डंसले रामा पिया मोर मरि गैले,
अरे सखिया हो

पियवा के वियोगवा हम मरि जाइब ये राम
पियवा मोर कोढ़ी होते, दुअरे पर बैठल रहतन,
अरे सखिया हो
सेनुरा पहिनतीन भर-भर मांगन ये राम
दास कबीर हो बाबा लिखलन निरगुनया हो,
अरे सखिया हो
लोगवा सबके गाइके सुनाई ये राम

इस पार गंगा नदी बहती है और उस पार यमुना तथा दोनों के बीच में बालू-रेत पड़ती है। उस पार वाले बालू-रेत के ऊपर मैं अपने प्रियतम को लेकर सो रही थी। हे सखी! तभी पिया की अंगुली में नाग ने डंस लिया। नाग के काटने से मेरे प्रियतम मृत्यु को प्राप्त हो गये। हे भगवान! पिया के वियोग में मैं मर जाऊंगी। अगर मेरे प्रीतम कोढ़ी होते तो कम से कम दुआरे पर बैठे ही रहते। हे सखी! तब मैं मांग भर-भर कर सिन्दुर पहनती। हे बाबा, कबीरदास ने इस निर्गुण की रचना की है। जिसे लोग अब सबको गा-गाकर सुनाते हैं।

निर्गुण-8

एक ता मो बारी भोरी दूसरे पिया के चोरी,
अरे सखिया रे
तीसरे विरह से अंखिया मातल हो राम
फूल लोढ़े गैलीं बारी, सारी मोरी अटकल डारि,
अरे सखिया रे
पिया बिनु कोय नहिं सरिया छोड़ाबेलि हो राम
झूलत-झूलत बारी, चढ़ि गैलीं महल अटारी,
अरे सखिया रे
जहमा रे योगिया धुनियां रमावेला हो राम
सारी मोरी फाटी गैलीं, अंगिया मसकी गैली,
अरे सखिया रे
नैना टपकी नौरंग भीजेला हो राम
जौने रे मनदिरवा में अति सुख पउलीं,
अरे सखिया रे
उहे रे मनदिरवा अगिया लागल हो राम

एक तो मैं छोटी और भोली हूं, दूसरे पिया चोरी-चोरी भाग गये हैं, रे सखी! तीसरे वियोग से आंखें मातल (उन्मत्त) हैं। बाग में फूल लोढ़ने (बटोरने) गई थी कि डाल में मेरी साड़ी उलझ गयी। ये सखी! प्रीतम के बिना कोई भी साड़ी छुड़ाने वाला नहीं है। बाग में इधर-उधर भटकते हुए मैं महल की अटारी (ऊपरी मंजिल) जा पहुंची जहां एक योगी धुनी रमाये हुए था। मेरी साड़ी फट गयी और अंगिया (Bodice) कुरती मसक गई। नयनों से आंसू टपकने लगे। नवरंग (नव विवाहता अंग) आंसू से भींग गये। योगी का धुनी रमाने का तात्पर्य है प्रीतम की चिता का साक्षात्कार। प्रीतम के जिन अंगों से अति सुखानूभूति हुआ करती थी, ये सखी! उसी में आग लगी हुई थी।

निर्गुण-9

जब तक बारी बा उमिरिया, ता बाबा के नगरिया बानी ये राम
ससुरा से आई जब खबरयिा, तब माई के दुअरिया छूटी ये राम
एक दिन हमरे सँवरिया, लेइ के पियरिया अइहैं ये राम
सखी सब पेहनाई के चुनरिया, डोली भीतर बइठाइहैं ये राम
ऊपरा से ललकी ओहरिया, चारि गौ कहरिया अइहैं ये राम
अंगना में भौजी महतरिया औरि बाबुजी बहरिया रोवे ये राम
अंतिम भरि अकबरिया, हमरा से नेहिया छोड़इहैं ये राम
जाहि दिन बनिके बहुरिया हम ससुररिया जाइब ये राम
सैंया से मिलिहैं नजरिया, ता सैंया सेजरिया अइहैं ये राम

जब तक छोटी उम्र है तब तक बाबा के नगर में हूं। ससुराल से जब (गौना की) खबर आयेगी तो माता का द्वार छूट जायेगा। उस दिन प्रीतम पियरी (सुहाग का जोड़ा) लेकर आयेंगे। सभी सखी मिलकर सुहाग का जोड़ा पहनाकर डोली के अन्दर बिठा देंगी। डोली के ऊपर लाल ओहार (कफन) डाली जायेगी और चार कहार डोली ढोने के लिए आ जायेंगे। झटके से (आनन-फानन) बाहर निकाल देंगे। इसमें तनिक भी देर नहीं लगेगी। आंगन में भावज-मां तथा पिता जी बाहर में रोयेंगे। सब लोग अंतिम बार अंकवार में भरकर मुझसे स्नेह (नाता) छुड़ा लेंगे। उसी दिन बहुरिया बनूंगी और ससुराल चली जाऊंगी। वहां सैंया से नजर मिलेगी तब सैंया सेज पर आयेंगे।

निर्गुण-10

भवंरबा के तोहरा संग जाई, भवंरबा के तोहरा संग जाई
आबे के बेरिया सब केहु जानेला, दुअरा पर बाजेल बधाइ

जाई के बेरिया केहु नहिं जाने, हंस अकेले जाई
देहरी पकड़ि के मेहरी रोवे, बांह पकड़ के भाई
बीच अंगनमा माता जी रोवे, बबुआ के होवेला बिदाई,
कहत कबीर सुनो भाय साधो, सतगुरु सरना में जाई
जो इहे पद का अरथ बतइहैं, जगत पार होई जाई, भवंरबा...

ये भौंरा तुम्हारे साथ कौन जायेगा, अकेला ही जाना पड़ेगा। जब बालक पैदा होता है तो सभी को मालूम हो जाता है क्योंकि ड्योढ़ी पर बधाई बजती है, हर्षोल्लास का उत्सव होता है। जाते समय (मृत्यु के समय) किसी को आभास भी नहीं होता क्योंकि हंस (प्राण पखेरू) अकेला ही उड़ जाता है। देहली पकड़कर पत्नी रोती है, बांह पकड़कर भाई रोता है और बीच आंगन में माता जी रोते हुए कहती हैं कि बबुआ प्यारे पुत्र की विदाई हो रही है। कबीर कहते हैं, ये साधु भाई! सद्गुरु की शरण में जाओ। वही इस पद का अर्थ बतावेंगे और संसार रूपी भवसागर से पार हो जाओगे।

निर्गुण–11

कौन नगरिया मोरा सैंया जी डेरा, सखी हो
कैसे जइबे ना हम जानि रे डगरिया राम
भारी भइली ना हमरी चढली उमिरिया
कल ना परेला निसदिन कसकेला जियरा राम, सखी हो
बिरही नैसा बरसे आठो रे पहरिया राम
जैसे बढ़ेला दिन–दिन द्वितिया के चन्दा, सखी हो
वैसे बढ़ेला हमरा, बिरहा के घड़िया राम,

कौन नगर में मेरे सैंया का डेरा (शिविर) है। हे सखी! कैसे जाऊंगी, मैं तो वहां का डगर (मार्ग) भी नहीं जानती। अभी तक तो मैं कमसीन अनाड़ी थी। लेकिन सखी मेरी बढ़ती हुई उम्र भारी (बोझ) लगने लगी है। रात–दिन कल (चैन) नहीं पड़ती है और हृदय में कसक (दर्द) होती है। वियोगिनी (पिया से बिछड़ी हुई) नयना आठों पहर बरसती रहती है। हे सखी! जैसे–जैसे दूज का चांद बढ़ता जाता है वैसे–वैसे मेरे विरह की घड़ी बढ़ती जाती है। यहां विरह (प्रीतम से मिलन) की कल्पना है। एक साखी में आता है–

नैना अन्तरि आव तू, नैन झांप तोहिं लेऊं।
ना मैं देखूं और को, ना तोहि देखन देऊं

निर्गुण–12

ससुरा से सनदेसा रे आइल, दुअरे ठाढ़ि सबारी बा
अब ससुरे घर कैसे रे जाई, चुनरी मैल हमारी बा
चुनरी काहे ना रंगाये गोरी पांच रंग में
ई चुनरी तोहे सतगुरु दीनहा, पहिर ओढ़ि के मैली कीनहा
जैबू का पहिर गोरी पिया संग में, चुनरी काहे...
जब पिया अइहैं लेन गमनमा, एको न चलिहै तोर बहनमा
दाग देखिहैं तोर अंचरन में, चुनरी काहे ना
कहत कबीर सुनो भाय साधु, ज्ञान ध्यान का साबुन लाओ
दाग छुटिहैं तोर अंचरन में, चुनरी काहे न रंगाये गोरी पांच रंग में

ससुराल से संदेशा आ गया है कि तेरे दुआरे पर सवारी (अरथी) खड़ी है, लेकिन अब मैं ससुराल कैसे जाऊं, मेरी तो चुनरी (सोहागन का जोड़ा) मैली हो गयी है। ये गोरी! तुमने अपनी चुनरी पांच रंगों में क्यों न रंगाई? इस चुनरी को सद्गुरु ने तुम्हें दिया है। जिसे पहनकर और ओढ़कर मैली कर दी। पिया के साथ क्या पहनकर जाओगी? पिया जब गौना कराने आयेंगे तो तेरा एक भी बहाना नहिं चलेगा। तुम्हारे आंचल का दाग देख लेंगे। कबीर कहते हैं ये भाई साधु! ज्ञान और ध्यान का साबुन ले आओ, उसी से तुम्हारे आंचल का दाग छूटेगा।

निर्गुण–13

का भैले माटिया में भागि गैले रतिया में,
बनि के योगिनिया जोहे तानि रहिया
मोर पिया हो, तोरा बिनु लगे ना जिया।
ना जाने सैंया गैले कौने नगरिया,
कुछहु बुझात नैखे, सूझे न डगरिया मोर पिया हो,...
टीस मारे छतिया में, लोर बहे अंखिया में,
न जाने पियवा गैले कौने रहिया, मोर पिया...
हमरा के भइल बाटे बैरी जमाना,
घरबा के लोग सब मारे ला ताना
कैसे रही देसबा में, बिरहन के भेषबा में
सूनी–सूनी लागे मोरा सेजिया, मोर पिया...
खोजि अइली सगरो हटिया बजरिया,
खोजत–खोजत हमर थकल सरीरिया
दुःख कही केकरा के, छोड़ि गैले हमरा के,
मोर पिया हो, तोरा बिनु लागे ना जिया।

इस मिट्टी की देह में क्या हुआ कि पिया रात में भाग गये और मैं योगिन बनकर राह जोह रही हूं। हे पिया! तुम्हारे बिना जी (दिल) नहीं लगता। ना जाने सैयां कौन-से नगर को गये। कुछ समझ नहीं आता। कोई रास्ता नहीं सूझता है। सुई चुभने जैसी वेदना छाती में उठती है, आंख से लोर (आंसू) बहती हैं। ना जाने पिया किस राह पर गये। संसार के लोग मेरा दुश्मन हो गये हैं और घर (परिवार) के सब लोग भी ताना मारते हैं, मजाक बनाते हैं। इस संसार में बिरहिन के वेष में कैसे रहूं? मेरी सेज सूनी-सूनी-सी लगती है।

सब जगह हाट-बाजार तक में खोज आयी हूं। खोजते-खोजते मेरा शरीर थक गया है। अपना दुख मैं किससे कहूं कि मेरे प्रियतम मुझे छोड़ गये। हे प्रीतम तुम्हारे बिना जी नहीं लगता।

निर्गुण-14

अरे अंखिया में भरिके असरबा तकत बानि पियबा के हो राह
लागी रंग चुनरी सबुज रंग लहंगा,
नैना के कजरा पिरितिया में महंगा
सिंहोरबा में लेई के सेनुरबा, तकत बानि पियवा के हो राह
रची-रची मेंहदी से रंगलीं हथेलिया,
गजरा के डोरबा में चमपा चमेलिया
खोइछा से भरि के अचरबा, तकत बानि पियवा के हो राह
एक ओरि सजना के उमड़े सेनहिया,
एक ओरी कहे तू सूखल जाले देहिया
अब तो छूटी गइल मोर रे नैहरबा,
पिया हो तकत बानि तोहर रहिया।

आंखों में आशा भरकर पिया की राह ताक रही हूं, प्रतीक्षा में हूं। लाल रंग की चुनरी है, साबुज (बैंगनी) रंग का लहंगा है और आंखों का काजल प्रीत में महंगा (कीमती) है। सिंहोरा (सिन्दुर दानी) में सिन्दुर भरकर पिया के आने की राह ताक रही हूं। मेंहदी रचा-रचाकर हथेली रंगायी हूं। और गजरे के डोर में चम्पा-चमेली के फूल गुथवायी हूं। आंचल के खोइच्छा भरकर विदाई के लिए तैयार हूं, बस पिया की राह देख रही हूं। (दुलहिन की विदाई के समय आंचल के कोर में चावल-हल्दी-कुमकुम एवं सिक्का रखकर कमर में खोंसा जाता है जिसे खोइच्छा कहा जाता है) एक ओर साजन के प्रति स्नेह उमड़ रहा है तो दूसरी ओर आने में विलम्ब के कारण देह सूख रही है। अब तो मेरा नैहर छूट चुका है। हे प्रीतम! तुम्हारा ही आसरा है इसलिए तुम्हारी राह ताक रही हूं।

निर्गुण-15

एक दिन नदी के तीरे जात रहलीं धीरे-धीरे,
हम आंखि देखलीं, सुनदर सरीरिया अगिया में जरेला ये राम
बांसवा के लेइ बिमाना, घाट अइले चारि जना
मुंहमा पर अगिया, अपने जलमलका उहंमा धरेला ये राम
हित-मित जे-जे रहल, एक मुँह सबे कहल
बेटा के जरले बाबू जी के नर-तनमा तरेला ये राम
भला बुरा करम कमाई जेहि लागि कइला ये भाई
अब केकरा के खातिर, ऊँच नीच मानुस देहिया करेला ये राम
कुले भइले जेकरा लागि, उहे धरै मुंह पर आगि
इहे सोची सोची अंखिया से झर-झर लोरवा ढरेला ये राम

एक रोज नदी के तट पर मैं धीरे-धीरे जा रहा था। उसी समय खुद की आंखों से मैंने वहां आग में एक सुन्दर शरीर को जलते हुए देखा। बांस के विमान (बांस की अरथी) के ऊपर चार जने उसे लेकर नदी के घाट पर आये थे। वहां पर उसी के जनमाये हुए पुत्र ने पिता के मुख पर आग धर दिया था। वहां जितने भी मृतक के सगे-सम्बन्धी आये थे सबके मुंह से एक ही बात निकल रही थी कि बेटा द्वारा जलाये जाने से पिता जी का नर-तन (मानव-शरीर) तर जाता है, यानी आवा-गमन से मुक्त हो जाता है। जिन लोगों के लिए भला-बुरा सब कर्म-कमाई (उचित-अनुचित कर्म) तुमने यहां किया है, ऐ भाई! उसका फल कोई और नहीं, तुम्हें ही मिलता है फिर किसके वास्ते मानव शरीर में ऊंच-नीच का भेद-भाव करते हो। जिसके लिए अनुचित कर्म तुमने किया वही मुंह में आग लगा देता है। यह सोच-सोचकर आंख से झर-झर आंसू टपकता है।

—क्रमशः

लघु-कथा

कचरा

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

सेवानिवृत्त हो चुके जगन्नाथ को जब अंतिम पड़ाव पर आकर घर बनवाना पड़ा तो उन्हें पसीना छूटने लगा। घर-परिवार वालों की फरमाइश और सुझाव के चलते उनका बजट बढ़ता चला गया और सारी जमा-पूंजी खत्म हो गयी। बस नाबालिग पोते-पोती के नाम पर जमा छोटी-छोटी राशि के एफ.डी. बचे हुए थे। इनमें कुछ दस-पन्द्रह हजार के थे तो कुछ बीस-पचीस हजार के। चूंकि एफ.डी. बच्चों के नाम पर थे, इसलिए वे उन्हें तोड़ना नहीं चाहते थे और उनके एवज में बैंक से लोन निकालकर काम चलाना चाहते थे। यद्यपि उन खातों का संचालन वे स्वयं कर रहे थे और बच्चों के साथ उनका भी नाम जुड़ा हुआ था फिर भी बैंक के अधिकारी दुविधा में थे कि जगन्नाथ को लोन दिया जा सकता है या नहीं। अतः जानकारी के लिए वे उच्च अधिकारी को फोन करने लगे।

उसी समय वहां नगर का एक बड़ा व्यापारी पहुंच गया। उस व्यापारी ने संबंधित अधिकारी से हाथ मिलाया तो उन्होंने व्यापारी को कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। जाहिर था कि वे एक दूसरे से भलीभांति परिचित थे। इसी बीच वहां चाय आ गयी तो उस अधिकारी ने अपने साथ उस व्यापारी के लिए भी चाय रखवा लिया। जगन्नाथ तो सामान्य खातेदार थे। चाय पीते हुए व्यापारी की दृष्टि मेज पर रखी एफ.डी. की रसीदों पर गयी। उन रसीदों को उलट-पुलट कर देखने के बाद उन्होंने व्यंग्य से मुस्कुराते हुए पूछा, "अरे, ये कचरे किसके हैं?" जबकि वे अच्छी तरह जान गये थे कि रसीदें जगन्नाथ के ही हैं।

व्यापारी के इस व्यंग्य पर फोन कर रहे अधिकारी महोदय मुस्कुरा उठे। जगन्नाथ समझ गये कि अहंकार में डूबा व्यापारी उसे नीचा दिखाने की नीयत में व्यंग्य कर रहा है। उन्होंने सहज भाव से जवाब दिया "ये मेरे हैं। और हैं तो कचरा ही। मेरे पास कम है, आपके पास कुछ ज्यादा होंगे क्योंकि आप बड़े व्यापारी हैं और दिन-रात कचरा बटोरने में लगे रहते हैं। और यहां बैंक में कचरे का ही लेन-देन होता है इसीलिए आप भी आये हैं और अन्य लोग भी!"

जगन्नाथ का अनपेक्षित जवाब सुन उस व्यापारी का मुंह उतर गया, साथ ही बैंक अधिकारी की मुस्कान भी गायब हो गयी थी। फिर उस अधिकारी ने जगन्नाथ को बताया कि लोन के लिए आपको कोर्ट से शपथ पत्र लाना होगा। शपथ पत्र की बात सुनते ही जगन्नाथ वहां से उठ गये, "मैं अपने ही जमा किये रुपयों के लिए शपथ पत्र नहीं लाऊंगा।" संयोग से उसी रात पांच सौ और एक हजार रुपये के नोटों को चलन से बाहर होने की घोषणा की गई। दूसरे दिन पता चला कि इस घोषणा के बाद रात भर जागने वालों में वह व्यापारी भी था। क्योंकि घर में रखे लाखों-करोड़ों के नोट सचमुच कचरे में तबदील हो गये थे।

धर्मेन्द्र मौर्य के दोहे

सज्जन, स्नेही वट-विटप, करते शीतल छांव।
सुकृत्यों के पुण्य से, बसते सुख के गांव॥ 1॥

संतों का संसर्ग कर, सदा डरेगी मीच।
पर दुष्टों के संग से, बन जाओगे नीच॥ 2॥

भटक चुके कितने जनम, अब मत भटको मित्र!
रंग न छूटे जो कभी, रंग लो मानस-चित्र॥ 3॥

प्रकृति, संत, सद्ग्रन्थ सब, हैं सुख के आगार।
पर इनसे मुख मोड़कर, जीवन कारागार॥ 4॥

पानी सा जीवन रहे, कर ले सबसे प्रीति।
सबको अपना मान तू, जग की यह है रीति॥ 5॥

जब दुष्चक्र, दुराव का, मिट जाये सब खेल।
सत्य, दया, सद्भाव की, फैलेगी तब बेल॥ 6॥

शहद से मीठे शब्द हों, कोयल जैसी तान।
प्रेम-पुष्प निशि-दिन झरें, सुख का तने वितान॥ 7॥

सद्गुरु-जलधि अथाह में, डूबें जो सब जीव।
तो जीवन का सकल दुःख, पलटे लेकर नींव॥ 8॥

जुआ-खेल जीवन सकल, सुख-दुःख इसके दाँव।
शूल यहाँ प्रति धूलि-कण, धरें फूँक कर पाँव॥ 9॥

जीवन के रण-क्षेत्र में, सभी जगह हैं द्वन्द्व।
मन-माया के वश सभी, कोई नहीं स्वच्छन्द॥10॥

केवल वे ही मुक्त हैं, जो विषयों से दूर।
मानस के संकल्प सब, कर डाले हैं चूर॥11॥

साहब, बन्दगी!

लेखक—श्री पी.के. द्विवेदी

साहब बन्दगी! की शान्तिदायिनी अमृत वाणी की स्वर-लहरी कान में पड़ते ही 'कबीरपन्थी' सन्तों व साधकों के सम्मेलन का चित्र मानस-पटल पर उभरने लगता है। बार-बार मन में यह प्रश्न उठने लगता है कि आख़िर ये 'साहब' हैं कौन; जिनकी वन्दना की जाती है और क्यों तीन बार की जाती है?

कारण के बिना कार्य तो होता ही नहीं। सन्तों से सुना है कि यही 'विश्व-व्यापी नियम' भी है।

'साहब' शब्द का प्रथम परिचय फारसी भाषा से होता है; जिसका अर्थ है : स्वामी। यह शब्द भारत में काफी रच-पच जाने से बहु प्रयोज्य हो गया है। अनेक अर्थों में इसका प्रयोग होने लगा है। इस शब्द का प्रयोग किसी अधिकारी तथा प्रतिष्ठित एवं पदासीन व्यक्ति जैसे—अध्यापक, चिकित्सक, विशेषज्ञ एवं कलाकार आदि के नाम या पद के साथ जोड़ा जाने लगा है। इसके अतिरिक्त किसी व्यक्ति विशेष को सम्मानित करने के लिए भी साहब शब्द का प्रयोग होने लगा है।

महान क्रान्तिकारी सद्गुरु संत कबीर ने इस शब्द का प्रयोग 'श्रेष्ठ' के निमित्त किया है। आत्मा स्वभावतः श्रेष्ठ है। अतः 'साहब' शब्द आत्मा का समानार्थी भी है। स्व-विस्मृति होने के कारण यह श्रेष्ठ, अपने को निकृष्ट और असहाय समझने लगा है। कहा जाता है कि समुद्र लांघ कर उस पार, लंका पहुंचने के प्रश्न पर अतुलित पराक्रमी और महान बलशाली स्वयं हनुमान जी भी अपनी सामर्थ्य से अनभिज्ञ होने के कारण तब तक शान्त और मौन बने रहे जब तक 'जामवन्त' ने उन्हें उनके शौर्य की याद नहीं दिलायी। गुदड़ी में लाल फिर भी भिखारी!

सद्गुरु कबीर दिव्य चेतना के धनी थे। आत्मा की उन्हें पहचान थी। आत्मा की श्रेष्ठता से वे पूर्ण परिचित थे। आत्मा की दीन-हीन दशा देखकर वे द्रवित हो उठे। उन्होंने डंके की चोट पर आत्माओं को उनके श्रेष्ठ होने का संदेश दिया। डंके की चोट पर वही बात कही जाती है, जो सन्देह-रहित हो, बिलकुल पक्की बात हो। पक्की बात का प्रमाण है 'तिर्वाचा'। तिर्वाचा शब्द का अर्थ है : वही बात तीन बार।

साहब बन्दगी! तीन बार कहने का आशय है—हे आत्माओ! तुम निश्चय ही श्रेष्ठ हो। इसलिए मैं तुम्हारी वन्दना करता हूं। तुम्हारे सामने झुकता हूं। वन्दना का अर्थ झुकना भी होता है। किसी स्वागत-समारोह में आम या अशोक वृक्ष की पत्तियां रस्सी में पिरोकर लटकाने से वे झुक जाती हैं। इसीलिए झुकी हुई पत्तियों को वन्दनवार कहा जाता है।

'गुरु' का एक अर्थ होता है—वजनी, भारी। जिनकी रहनी, गहनी और करनी में वजन है, दम है; वही—गुरु है। सद्गुरु-साहब प्रेम, दया और करुणा से लबालब भरे हुए थे; इसलिए स्वभावतः वे भारी थे। भारीपन ही झुकाता है। जल से आर्द्र बादल झुक जाते हैं, फल से लदे हुए वृक्ष झुक जाते हैं और सामान से लदा तराजू का पलड़ा भी झुक जाता है।

ज्ञान (अनुभव), अनासक्ति तथा निर्भयता के खजाने के जो स्वामी हैं; ऐसे महामानव का करुणावश झुक पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं, स्वाभाविक ही है। उदाहरणतः उनकी सहृदय वाणी देखते ही बनती है—

"दादा भाई बाप कै लेखों, चरनन होइहौं बन्दा"

अहेतुकी-कृपालु 'साहब' जी कहते हैं कि 'हे मानव! तुम मेरी बात ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें अपना 'पुरुखा' तथा भाई और पिता-जैसा मान कर, तुम्हारे चरणों का बन्दा बनूंगा।' वे भटके हुए मनुष्यों को 'ज्ञान की मशाल' थमाना चाह रहे हैं और आग्रह भी कर रहे हैं। नेकी और चिरौरी? कैसी अद्भुत बात है। कितनी करुणा छलक रही है, उनके हृदय से? संसार में इतना उदार और कौन है? ❑

व्यवहार वीथी

व्यवहार की सावधानियां

माता-पिता बड़े उमंग, उल्लास एवं आनंदपूर्वक बेटे का विवाह का करके बहू लाते हैं और सोचते हैं अब बहू-बेटे को घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी सौंपकर निश्चिंततापूर्वक जीवन जीयेंगे, परंतु कुछ दिनों के बाद वे देखते हैं कि बहू धीरे-धीरे उनसे दूर होती जा रही है और बहू के साथ बेटा भी दूर होता जा रहा है। बहू अब सास-ससुर के साथ रहना नहीं चाहती। इसलिए नहीं कि बेटा अलग किसी दूसरे शहर में नौकरी कर रहा है। यदि बेटा दूसरे शहर में नौकरी कर रहा है तब तो बहू बेटा के साथ दूसरे शहर में रहेगी ही, क्योंकि वह तो उसी के लिए ही आयी है। परंतु देखा जाता है कि बेटा उसी शहर में नौकरी कर रहा है, जहां माता-पिता रह रहे हैं, फिर भी बहू सास-ससुर के साथ रहना नहीं चाहती। क्यों? निश्चित ही आधुनिक शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित कितने बेटा-बहू, माता-पिता या सास-ससुर से अलग स्वतंत्र रहकर अपनी मनमर्जी से जीवन जीना चाहते हैं, परंतु कितने बेटा-बहू माता-पिता के साथ रहकर उनकी सेवा करना चाहते हैं, परंतु माता-पिता या सास-ससुर की थोड़ी असावधानी के कारण बहू सास-ससुर के साथ रहना नहीं चाहती, और बहू अर्थात पत्नी के कारण बेटा को भी माता-पिता से अलग होना पड़ता है।

कितने घरों में प्रायः यह देखा जाता है कि माता-पिता अर्थात सास-ससुर छोटी-छोटी बातों को लेकर बहू में दोष निकालते रहते हैं, उसे टोकते रहते हैं, यहां तक उसके खान-पान, रहन-सहन, उठने-बैठने आदि को लेकर टीका-टिप्पणी करते रहते हैं। इतना ही नहीं, बात-बात में बहू के सामने बेटी की प्रशंसा करते हैं और उसका उदाहरण देते रहते हैं कि हमारी बेटी इस काम को ऐसा करती, उस काम को वैसा करती, वह होती तो यह काम बिगड़ने न पाता। मतलब बहू के मुकाबले बेटी को ज्यादा योग्य ठहराते हैं और बेटी के मुकाबले बहू की कीमत कम आंकते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि बहू के सामने बेटी की ज्यादा प्रशंसा करना और बात-बात में बेटी का उदाहरण देना बहू का अपमान करना है और कोई बहू इसे पसंद नहीं करेगी। धीरे-धीरे उसके मन में सास-ससुर के प्रति आदर-सेवा का भाव घटकर अनादर का भाव बढ़ता जाता है और फिर वह सास-ससुर से अलग रहने में अच्छा समझती है।

आपकी बेटी बहुत योग्य, समझदार एवं व्यवहार-कुशल हो सकती है, होगी भी। हर मां-बाप अपनी बेटी को बहुत योग्य एवं समझदार मानते हैं, परंतु जरा ठहरिये, आपकी बेटी कितनी योग्य, समझदार एवं व्यवहारकुशल है यह उनके सास-ससुर से पूछकर देखें। क्या आपकी बेटी अपने सास-ससुर को पूरा संतोष दे रही है? उसके सास-ससुर उससे पूर्ण संतुष्ट और प्रसन्न हैं? यदि हां, तो निश्चित ही आपकी बेटी कुशल है और प्रशंसा के योग्य है और यदि नहीं, तो आप अपनी बेटी को बहुत योग्य किस आधार पर मानते हैं? आप कहेंगे कि मेरी बेटी तो बहुत योग्य है, उसके सास-ससुर या ससुराल वालों का व्यवहार ही ठीक नहीं है, वे समझदार नहीं हैं, तो यही विचार आपकी बहू के माता-पिता का भी है। उनकी दृष्टि में उनकी बेटी अर्थात आपकी बहू बहुत योग्य और समझदार है और आप लोगों का ही व्यवहार सही नहीं है। आप अपनी बहू की कीमत, उसकी योग्यता समझ नहीं पा रहे हैं। अतः बात-बात में बेटी से बहू की तुलना न करें। आपकी बेटी बहुत योग्य एवं समझदार है, परंतु उतना ही योग्य एवं समझदार आपकी बहू भी है इसको स्वीकार करें। फिर आपकी बेटी ससुराल चली गयी है, अब आपके साथ या पास में बहू है, उसकी उपेक्षा न करें, उसकी योग्यता समझें और उसे प्यार दें।

कितनी बहुएं सास-ससुर और ससुराल वालों के लिए इसलिए अप्रिय एवं उपेक्षित हो जाती हैं कि वे बात-बात में मायके की प्रशंसा करती रहती हैं और वहां का उदाहरण देती रहती हैं कि वहां ऐसा था, वैसा था, ऐसी-ऐसी महंगी चीजें एवं सुविधाएं थीं और यहां ससुराल में तो कुछ भी सुविधा नहीं है। जो चीजें हैं वे

बहुत पुरानी या साधारण हैं। उनके ख्याल से ससुराल में जो कुछ है सब गलत है या बहुत सामान्य-साधारण हैं। सारी अच्छाइयां मायके में हैं। वे यह भूल जाती हैं कि मायका-नैहर चाहे जैसा रहा हो, वहां जो भी सुविधाएं रही हों, वहां से आपका संबंध अब छुट गया है। कभी जाना भी होगा तो मेहमान बनकर ही जाना होगा। यदि शादी के बाद बहुत लंबे समय तक मायके में रहना चाहेंगी या रहेंगी तो माता-पिता और भाई-भाभी से वह स्नेह, प्यार, सम्मान नहीं मिलेगा जो पहले मिलता रहा है। इसलिए शादी करके जब आप ससुराल आ ही गयी हैं, तो मायके की बात मायके में ही दफना दें। अब तो आपको ससुराल में ही रहना और जीना है, अतः वहां जो कुछ जैसा है उसको स्वीकार करें और मायके के साथ ससुराल की तुलना करना बंद करें, तभी ससुराल में प्रिय बन सकती हैं और सबका हार्दिक स्नेह, प्यार एवं सम्मान पा सकती हैं।

कितनी बहुएं ससुराल में इसलिए भी अप्रिय एवं उपेक्षित हो जाती हैं कि ससुराल में भी वे उसी प्रकार स्वतंत्रतापूर्वक रहना एवं मनमर्जीपूर्वक व्यवहार करना चाहती हैं जिस प्रकार मायके में रहती और करती थीं, परंतु अब सब कुछ वैसा ही होने वाला नहीं है। मायका और ससुराल में अंतर है। जब पूर्ण स्वतंत्रतापूर्वक रहना और मनमर्जीपूर्वक बात-व्यवहार ही करना था तो शादी करके ससुराल ही क्यों आयी, तब तो फिर आजीवन मायके में ही रहना था, परंतु आजीवन मायके में रहना और पूर्ण स्वतंत्रता एवं मनमर्जीपूर्वक व्यवहार करना तो वहां भी संभव नहीं है। हर जगह की अपनी एक अलग मर्यादा होती है। जब आप शादी के बाद ससुराल आ ही गयी हैं तो वहां की मर्यादा एवं सामान्य शिष्टाचार का पालन करना आपका कर्तव्य है। ससुराल की मर्यादा एवं सामान्य शिष्टाचार का पालन करके आप सबका प्रिय बन सकती हैं।

कितने माता-पिता शादी के बाद जब बेटी ससुराल चली जाती है तब कोई न कोई बहाना करके बार-बार उसे बुलाते रहते हैं, और दो दिन की अपेक्षा चार दिन-सप्ताह भर अपने पास रखना चाहते हैं, परंतु वे ही आवश्यक कार्य होने पर भी बहू को उसके मायके नहीं भेजना चाहते, दो दिन की भी छुट्टी नहीं देना चाहते, आनाकानी करते हैं। ये दोनों ही गलत हैं। जितना संभव हो बेटी को उसकी ससुराल से कम बुलाना चाहिए और तभी बुलाना चाहिए जब कोई ज्यादा आवश्यकता हो। ज्यादा आवश्यकता होने पर या कोई शुभ प्रसंग आने पर ससुराल वाले स्वयं ही भेज देंगे। इसके विपरीत आवश्यकता न होने पर भी कभी-कभी बहू को यह कहकर मायके जाने के लिए दो-चार दिन की छुट्टी दे देना चाहिए कि बेटी, तुम्हें अपने माता-पिता, भाई-भाभी से मिले बहुत दिन हो गये हैं, जाओ दो-चार दिन मिलकर आ जाओ। इससे बहू के मन में आपके लिए आदर-सम्मान बना रहेगा। यदि बहू समझदार होगी तो बिना आवश्यकता के स्वयं नहीं जायेगी और यदि समझदार नहीं है तो आपसे बिना पूछे, आपको बिना बताये चली जायेगी।

कितने माता-पिता यह कहकर अपनी बेटी को ससुराल भेजते हैं कि बेटी, याद रखना कि तू सामान्य घर की नहीं, अपितु बड़े घर की बेटी है, पढ़ी-लिखी है, किसी से दबना मत, ईंट का जवाब पत्थर से देना। माता-पिता से ऐसी शह पाकर लड़की जब ससुराल जाती है तब छोटी-छोटी बातों को लेकर सबसे झगड़ती रहती है और सबको धमकी देती रहती है। ऐसी लड़की ससुराल में सबको अप्रिय हो जाती है, लोग उससे बात करना, उस पर ध्यान देना ही छोड़ देते हैं। समझदार माता-पिता यह समझाकर अपनी बेटी को उसकी ससुराल भेजते हैं कि बेटी, अब तू ससुराल जा रही है। अब वही तेरा घर है। ध्यान रखना, मायका और ससुराल में बहुत अंतर होता है। वहां सबसे झुककर और सबका सहन कर सबसे विनम्रतापूर्वक व्यवहार करना। कहीं तेरे साथ कुछ अन्याय हो तो सास-ससुर या अन्य समझदार व्यक्ति से कहकर उसका समाधान करवा लेना।

शादी करके ससुराल जाने वाली हर लड़की को समझना चाहिए कि शादी करके अब मैं पति के साथ जा रही हूं। अब मेरे लिए पैसा या वस्तुएं महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, किन्तु पति महत्त्वपूर्ण है। मैंने पैसे और वस्तुओं से शादी

नहीं की है किन्तु पति से शादी की है, इसलिए अब मुझे पैसा और वस्तुओं पर ध्यान न देकर पति पर ध्यान देना है। पैसा से पति नहीं होता, किन्तु पति से पैसा होता है। पैसा और वस्तुएं तो बढ़ गये किन्तु पति का प्यार ही नहीं रहा तो पैसा और वस्तु लेकर क्या करूंगी। इसी प्रकार हर पति को चाहिए कि वह पत्नी को महत्त्व दे, चीजों को नहीं। आखिर तुमने निर्जीव वस्तुओं से शादी न कर एक जानदार-जीवित लड़की से शादी से की है, जिसके पास अपनी भावनाएं और आकाक्षाएं हैं। अतः उसकी भावना और आकांक्षा को समझें कि वह क्या चाहती है। चीजों, रुपये-पैसे के लोभ में पड़कर पत्नी की भावना-आकांक्षा को न कुचलें। चीजों, रुपये-पैसे, धन-दौलत के पीछे दौड़ते-दौड़ते पत्नी का प्यार खो गया तो जीवन नीरस और शुष्क बन जायेगा। आपकी गृहस्थी दुखद बन जायेगी।

पति-पत्नी के बीच में अहंकार को आड़े न आने दें। ऐसा कोई बात-व्यवहार न करें जिससे एक-दूसरे की भावनाएं आहत हों, अहंकार को ठेस लगे। अपने अहंकार को मिटाकर ही सामने वाले को सम्मान दिया जा सकता है और उसका दिल जीतकर उससे प्यार पाया जा सकता है। अतः झुककर रहना और सहन करना सीखें। तब आपकी गृहस्थी सुखद बनेगी।

वैसे तो हर व्यक्ति के लिए यही नियम है, परंतु गृहस्थी में तो इसकी अत्यंत आवश्यकता है कि पति-पत्नी दोनों अपने अधिकार पर ध्यान न देकर, उस पर दृष्टि केंद्रित न कर अपने कर्तव्य पर ध्यान दें। मुझे क्या मिलना चाहिए यह न सोचकर मुझे क्या करना चाहिए यह सोचें और करें। याद रखें, कर्तव्य के पीछे अधिकार छाया की तरह घुमता है। यह तभी संभव है जब पति-पत्नी दोनों एक दूसरे का महत्त्व समझेंगे और अपने अहंकार, स्वार्थ, कामना को गलाकर एक दूसरे की भावनाओं की रक्षा करते हुए परस्पर प्रेम, सेवा एवं समतापूर्वक व्यवहार करेंगे।

—धर्मेन्द्र दास

मानवता को अपनाओ

रचयिता—श्री सिद्धादास 'प्रेमी'

मानवता को अपनाओ
मां महान है देवि जगत में
उनको शीश झुकाओ।
नभ से उच्च पितृ की
श्रेणी जानो और जनाओ।
पूज्य गुरू को नमन करो,
गुण गाओ इन तीनों का,
इनकी सेवा करो हृदय से
जीवन सफल बनाओ॥ 1॥

अपना दीपक स्वयं बनो,
तब जग को ज्योति दिखाओ।
अपनी खुद पहचान करो,
यश की सुगन्ध फैलाओ।
अपना पथ यदि भूल गया
हो कोई भी पंथी,
तो विनम्र मधु स्वर से उसको,
सत्य मार्ग बतलाओ
मानवता को अपनाओ॥ 2॥

अहंकार को छोड़ मीत,
अत्यन्त सरल बन जाओ।
ढाई आखर प्रेम भाव को,
उर अपने बिठलाओ
पता नहीं तन छोड़ प्राण,
कब निकल जाय 'प्रेमी'
अतः मनुज को मनुज समझ-
कर सबको गले लगाओ
मानवता को अपनाओ॥ 3॥

अहंकार पतन का कारण है

लेखिका—श्रीमती रजनीश

अहंकार ऐसा दुर्गुण है जिसके आते ही अन्य दुर्गुण स्वयमेव चले आते हैं। जब भी हमारे मन में यह पौधे के रूप में पनपने लगे तब इसके अंकुरित होने से पहले ही इसे सत्संग, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की अग्नि में भून दें। इसको वृक्ष के रूप में फलीभूत न होने दें अन्यथा इसमें दुर्गुणों की अगणित शाखाएं फैल जाती हैं। इसकी शाखाएं हैं—यौवन का मद, विद्या का मद, धन का मद, मठ-आश्रम व मान-सम्मान पाने का मद।

जब ये सारे मद मनुष्य पर चढ़ने लगते हैं तब उसकी चाल मदमस्त हाथी के समान होने लगती है। मद के कारण ही हाथी सिर पर धूल फेंकता है लेकिन चींटी छोटी होते हुए भी धूल में मिली हुई चीनी को भी चुन लेती है।

जैसे चीनी बिखरी रेत में हाथी के हाथ न आवैगी,
ऐसा रे नान्हा बन मेरे मनवा चींटी बन चुग जावैगी।

यौवन का मद—यौवन जीवन की वसंत ऋतु। यह मनुष्य की चार अवस्थाओं में से एक है। यह पूरे जीवन को बनाने या बिगाड़ने की अवस्था है। इस अवस्था पर पूरा नियंत्रण करके जिया जाये तो पूरी उम्र सुखपूर्वक बीतेगी। इसके आते ही मनुष्य अपने रूप को अकारण ही दर्पण में देख-देखकर हर्षायमान होने लगता है। अरे भाई, क्या सुरूप क्या कुरूप, देह नाशे सब नाश हो जायेगा।

इस देह में सिर्फ ज्ञान व विवेक की प्रधानता है। बस इसको निखारते चलें तो जीवन सार्थक हो जायेगा।

मन में सोच विचार, बुलबुला पानी का।
दो दिन में मिट जाये, नशा जवानी का।।
भजन करो मस्त जवानी में बुढ़ापा किसने देखा है।

विद्या का मद—पढ़ने को तो बहुत लोग पढ़ते हैं, पढ़कर डिग्रियां भी हासिल कर लेते हैं लेकिन पढ़ने का महत्त्व तब है जब पढ़ाई के साथ-साथ नैतिकता का भी विकास हो। यदि व्यवहार में नैतिकता का अभाव है तो विद्या सारहीन है। यह बात तो सत्य है कि व्यक्ति जितना अध्ययन करता जाता है उतना ही मानसिक रूप से विकसित होता चला जाता है। जब हम विद्या हासिल करते हैं तब उसके ऊपर विवेक और गुरुभक्ति का अंकुश होना अत्यंत आवश्यक है जिससे विद्या का मद सिर चढ़कर न बोले। अपने माने गये प्राणी-पदार्थों में मोह करना अविद्या कहलाता है। अध्ययन-मनन द्वारा खूब विद्या, ज्ञान अर्जित करें लेकिन उसको स्वयं पर हावी न होने दें।

शिक्षा पाई ज्ञान बढ़ाया, बन बैठे बड़ ज्ञानी।
मान-अभिमान तजा न जाय, सब पर फिर जाये पानी।।

धन का मद—धन दो प्रकार का होता है—रुपये-पैसे का और ज्ञान का। रुपये-पैसे का जो धन है वह तो सीमित मात्रा में उपयुक्त रहता है किन्तु इसकी अधिकता बुद्धि को असंतुलित कर सकती है यदि इस पर अंकुश न रखा जाये।

सांई इतना दीजिए जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय।
(सद्गुरु कबीर)

कौड़ी-कौड़ी माया जोड्यो धर्म भक्ति बिसराई।
भिक्षुक को भिक्षा नहिं दीन्हों दुखी न भयो सहाई।।
सारी बिरथा भई कमाई तू न भूलो मनुवां।
(सद्गुरु अभिलाष साहेब जी)

आइए अब थोड़ा ज्ञान के मद पर विचार करते हैं। किसी भी वस्तु या पदार्थ के बारे में जानकारी हासिल करना ज्ञान कहलाता है और अच्छाई-बुराई के बारे में जानना, सत्य-असत्य के बारे में जानना, विद्या-अविद्या के बारे में जानना, नीर-क्षीर के बारे में जानना विवेक कहलाता है। जब ज्ञान की मात्रा बढ़ने लगे तब उस पर विवेक रूपी अंकुश अवश्य रखें अन्यथा अहंकार के आते ही यह पतन का कारण बन जायेगा। नित्य-प्रति अध्ययन-अभ्यास के द्वारा स्वयं को मांजने की प्रक्रिया जारी रखें, नहीं तो गाफिली में मारे जाओगे। कोई सत्पात्र मिले तो उससे ज्ञान की पूंजी अवश्य बांटें—

ज्ञान रतन धन कोठरी बिन गाहक मत खोल।
जब आवेंगे पारखी ले जायेंगे महंगे मोल।।

मठ-आश्रम व मान-सम्मान पाने का मद— स्त्री, पुत्र, घर, धन त्यागकर कोई साधुवेष धर लिया तो क्या विशेषता हो गई यदि उसने माने हुए बड़प्पन का घमण्ड नहीं छोड़ा। जिस बड़प्पन के अहंकार ने बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को पथभ्रष्ट कर दिया वही अहंकार आज भी सबको भ्रष्ट कर रहा है। रावण को राम ने नहीं बल्कि उसके अहंकार ने मारा था।

साधु भयो निज मुक्ति के हेतु से, भूलि गयो बहुमान के पाये।
चेला वो चेलि झमेल भयो नित, वाचिक ज्ञान में ध्यान भुलाये।।
भेषहिं मात्र से काज न पूर, तजो जग आश गहो नियराई।
खावत सोवत चैन उड़ावत, संत दशा कहं तूबिसराई।।

साधुओं में भी आपसी विरोध, द्वेष, असूया दोष (संसारी भाषा में दोष-दर्शन, चुगुली) देखने को मिलते हैं। कुछ अपने आश्रम को ही चमकाने में लगे रहते हैं। भक्तों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिये गये धन को आश्रम की साज-सज्जा प्रतिष्ठा इत्यादि में व्यय करके पत्थरों पर स्वयं का नाम छपवाते हैं, यह दर्शाने के लिए कि इसको हमने बनवाया है। मेरे विचार से नाम रूपी उपाधि मिथ्या होती है। नाम तो सिर्फ पहचान व जानकारी के लिए होता है। मान-सम्मान पाने के लिए 'नाम' का कोई महत्त्व नहीं है।

अध्ययन-मनन के लिए साफ-सुथरी जगह, स्वच्छ वातावरण की अधिक आवश्यकता है न कि गद्दीदार कुर्सी व टेबल की। यदि उपलब्ध हैं तो ठीक है, नहीं तो इनकी कोई खास आवश्यकता भी नहीं है। आवश्यकता है शाही आचरण की। शाही आचरण है—स्वयं को सद्गुण रूपी गहनों से सुसज्जित करने की प्रक्रिया में लगे रहना।

मान-सम्मान पाने का मोह क्षणिक है। पूज्यता-प्रतिष्ठा भी क्षणिक है। इन स्वप्नवत पदार्थों का अहंकार करना नादानी है, भोलापन है। कितने स्वामी लोग दूसरे त्यागी-से-त्यागी का भी नमस्कार नहीं करते। कुछ साधु मान-सम्मान पाने के चक्कर में अपनी वाणी को भी घुमा देते हैं।

"नमो-नमो नारायणी, राधे-राधे" ये सब वाणी पारखी सन्तों के मुख से शोभा नहीं देती। जो स्वयं ही 'पार' नहीं हैं वे दूसरे को क्या 'पार' करेंगे?

सच्चा पारखी संत कभी भी आश्रम व मान-सम्मान पाने के चक्कर में नहीं रहता। वह स्त्री इत्यादि से कोई सेवा नहीं लेता बल्कि अपना सब काम स्वयं करने में विश्वास रखता है। संत जन पल-पल मनुष्य को चेतावनी देते हैं कि अपने स्वरूप के अतिरिक्त मन, वासना, शरीर, इन्द्रिय, धन, कुटुम्ब, जाति-पांति, मान-प्रतिष्ठा, अधिकार जहां तक माया का पसारा है सबका अभिमान सर्वथा दूर कर देना चाहिए और दान, विनम्रता, सत्संग द्वारा अपना कल्याण करना चाहिए क्योंकि मृत्यु उपरान्त सब छूट जाता है, केवल कर्मों की अच्छी-बुरी कमाई ही साथ जाती है।

मत अभिमान करो तन का, क्षण ही में सब खोई रे।
जेहि हंकार भ्रमित मति तुम्हरी, संग न जइहैं कोई रे।।

(सद्गुरु अभिलाष साहेब जी)

जिनके आचरण पवित्र नहीं हैं, जो कामादि विकारों के शिकार हैं, जो राग-द्वेषादि मलिनताओं में लिपटे हैं, जिन्हें अपने स्वरूप का बोध नहीं है, जो भ्रांतियों में आकंठ डूबे हैं, ऐसे लोग गुरु या सद्गुरु बनकर जगत के लोगों को तारने की ठेकेदारी लेते हैं तो समाज का कैसे कल्याण होगा!

धूर्त गुरु सांसारिक लोगों की कमजोरियों को जानते हैं और सांसारिक चीजों के मिलने का प्रलोभन देकर उन्हें फंसाते हैं।

कबीर साहेब ने कहा है—हे मनुष्य! तुम दीन बनकर अपनी मानवता एवं अपने सत्य स्वरूप में नहीं प्रतिष्ठित हो सकते। तुम बिना कर्म किये, केवल गिड़गिड़ाकर और भीख मांगकर जो भोग और मोक्ष चाहते हो यह तुम्हारी गहरी भूल है। तुम्हारे पुरुषार्थ एवं श्रम के बिना कोई गुरु तुम्हें कुछ नहीं दे सकता। विवेक तथा रहनी सम्पन्न गुरु के उच्चादर्श तथा उपदेश साधक को प्रेरित करते हैं। उसे श्रम तो स्वयं ही करना पड़ता है। सत्य में श्रद्धा ही भक्ति है।

सारांशतः यदि हम अपने मन को सत्संग और विचार से बुहारते रहेंगे तो मन की मलिनता एवं अहंकार रूपी दुर्गुण से बचे रहेंगे। ❑

कर लो सच्चा तीर्थ

रचनाकार—डॉ. अमरनाथ सिंह

कर लो सच्चा तीर्थ मुसाफ़िर जागो।
ख़ुद की कर पहचान भरम सब त्यागो॥

मत मज़हब की स्पर्धा में तुम नहिं अटको।
दूर कहीं तीर्थाटन में भी तुम नहिं भटको।
ग़ैर और अपने समाज की रार नहीं।
मंदिर-मस्ज़िद पूजा-नमाज़ तक़रार नहीं।
चार धाम पृथ्वी परिकरमा का स्वांग नहीं।
मक्का मथुरा काशी काबा कैलाश नहीं।
घट में तेरा राम उसी में तुम अनुरागो।
कर लो सच्चा तीर्थ मुसाफ़िर जागो॥

पल-पल मन में भ्रमित धारणायें बैठाये।
दूर भटकते स्वयं औरों को भी भटकाये।
ये तो महज़ शरीर का सफ़र है इसको जानो।
पहुंचाये नहिं कभी लक्ष्य पर साँची मानो।
स्वप्न समान स्थूल कर्म से फल नहिं खाओ।
अन्तःशुद्धि से आत्मतीर्थ कर मंज़िल पाओ।
कस्तूरी कुण्डल माही है लौटि आपु में झांको।
कर लो सच्चा तीर्थ मुसाफ़िर जागो॥

दम्भ भर रहे अपने मन में हनूमान का।
पुरी द्वारका रामेश्वर का झारखंड में वैद्यनाथ का।
शत-शत नदियों में जा करके पावन नहान का।
सहस्त्र मंदिरों में नाना पूजा विधान का।
स्वार्थ कटोरी लिये दर बदर भाग रहे हो।
कल्पित देवी देव के आगे कोरी मन्नत मांग रहे हो।
सच्चे सुख के लिये कर्म पुरुषार्थ में लागो।
कर लो सच्चा तीर्थ मुसाफ़िर जागो॥

इधर-उधर संशय में हिरदै नहीं खपाओ।
आत्मयात्रा कर लो प्यारे अब दूरी नहिं धाओ।
जिया अँधेरे में जीवन भर अब घट दिया जलाओ।
करो सुचिन्तन मन की चिन्ता दूर भगाओ।
आदर्शों से खुद भी सँवरो औरों को भी सँवारो।
करो सभी से प्रेम बाग ईर्ष्या का उजारो।
मानवता ही धर्म इसी में सोवो जागो।
कर लो सच्चा तीर्थ मुसाफ़िर जागो॥

मुक्ति मानते हो यदि तुम गंगा स्नान से।
मुक्ति मानते हो यदि तुम मक्का प्रस्थान से।
मुक्त क्यों नहीं मगर सदा गंगा में रहता।
मुक्त क्यों नहीं शख़्स सदा मक्का में बसता।
निज में रहते इष्ट का तुम खोकर विश्वास।
ढूंढ़ा करते बाहर खोने पाने का लेकर अहसास।
युक्ति मुक्ति के लिये करो नहिं थाको।
कर लो सच्चा तीर्थ मुसाफ़िर जागो॥

जीवन में ही मुक्ति लक्ष्य के पथ पर चलकर।
कर लो तुम हृदयस्थ आत्मा की यात्रा प्रियवर।
हो मरने के बाद मुक्ति भरम यह तजकर।
करता जा शुभ कर्म सदा तू पावन मन कर।
सद्बुद्धि वृद्धि के लिये गहो सद्गुरू चरण।
निज स्वरूप स्थिति का दिल से करो वरण।
हो आत्मिक सुख शान्ति न दौड़ो-भागो।
कर लो सच्चा तीर्थ मुसाफ़िर जागो॥

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं, देखि भागै सोइ सूर नाहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना, मँडा घमसान तहँ खेत माहीं॥
सील को साँच संतोष साही भये, नाम समसेर तहँ खूब बाजै।
कहैं कबीर कोइ जूझिहैं सूरमा, कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै॥

युगद्रष्टा क्रांतिकारी कवि संत कबीर

लेखक—वशिष्ठ तिवारी

भारतभूमि सदा से महामनीषियों, तत्त्वज्ञानियों, युगदर्शी कवियों एवं संत-महात्माओं की कर्मभूमि रही है। जिस प्रकार सुकरात, अरस्तू, प्लेटो, लाओत्ज़ेतुंग, महात्मा बुद्ध और महावीर आदि विभूतियों ने अपने अमृतमय उपदेशों से समस्त विश्व को प्रभावित किया उसी प्रकार संत कबीर ने अपने अमर संदेश-ज्योति से समस्त भूमंडल को ज्योतित किया।

विभिन्न संगीतकारों, कथाकारों, उपदेशकों एवं रचनाकारों के विचारों के मंथन से कबीर की प्रासंगिकता सर्व स्वीकार्य है। आज हम जिस विषम परिवेश में अपना जीवन बिता रहे हैं, उसमें संत कबीर के प्रेरणादायी विचारों से प्रेरणा प्राप्त करने की नितान्त आवश्यकता है।

कबीर ने ऊंच-नीच, छूत-अछूत, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान, पंडित-अपंडित, मन्दिर-मस्जिद, राम-रहीम, साधु-असाधु आदि के भेदभावों को जड़ से उखाड़ने का स्तुत्य प्रयास किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "कबीर एक जबरदस्त क्रांतिकारी पुरुष थे।" आज झोपड़ी से लेकर महलों तक सर्वत्र कबीर की वाणियों की अनुगूंज है। सामान्य जन से लेकर बड़े-बड़े महात्माओं, संतों एवं विद्वानों तक उनकी वाणी पढ़ी-सुनी जा रही है। कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों से स्पष्ट कहा—

हिन्दू कहैं मोहिं राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपुस में दोउ लरि-लरि मुये, मर्म न काहू जाना।।

इस तरह हिन्दू और मुसलमानों के आपसी विभेद को दूर करने के लिए राम-रहीम अर्थात आत्मा और परमात्मा की एकता पर बल दिया। उन्होंने हिन्दुओं, ब्राह्मणों और मुसलमानों के विषय में कहा—

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी को जाया, और राह दे काहे न आया।
जो तू तुरुक तुरुकनि को जाया, पेटहि काहे न सुन्नति कराया।।

यदि ब्राह्मण या हिन्दू कहलाना चाहते हो तो तुम्हारी पैदाइश किसी दूसरे रास्ते से क्यों नहीं हुई? यदि पैदाइशी मुसलमान हो तो माता के गर्भ में ही क्यों नहीं खतना कराया। यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों की पैदाइश एक जैसी है, तो दोनों की जाति एक हुई। वह है मानव जाति। इस तरह ब्राह्मण-शूद्र तथा हिन्दू-मुसलमान नाम कुछ भी हो, सबकी पैदाइश तथा सबके शारीरिक तत्त्व एक समान है और सबके अन्दर चेतन आत्मा एक समान है।

माया के विषय में कबीर साहेब की स्पष्ट उक्ति है—

माया मोह सकल संसारा। इहै विचार न काहु विचारा।।
माया मोह कठिन है फंदा। करे विवेक सोइ जन बन्दा।।

संसार के सारे प्राणी माया-मोह से ग्रसित हैं, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण विषय पर किसी के पास विचार नहीं है। जो विवेक द्वारा माया-मोह रूपी बंधन को काट दे वही सच्चा भक्त कहलाने का अधिकारी है। अतः माया-मोह रूपी दलदल से निकलने की सद्गुरु कबीर की सीख हमारे जीवन सुधार और संस्कार के लिए एक मंत्र है।

कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों की ईश्वरीय एकता पर बल देते हुए कहा—

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया।। 1 ।।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि-हजरत नामधराया।। 2 ।।
गहना एक कनक ते गहना, यामें भाव न दूजा।। 3 ।।
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा।। 4 ।।
वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।। 5 ।।
को हिन्दू को तुरुक कहावे, एक जिमी पर रहिये।। 6 ।।

हे भाई, तुम्हें किसने पागल बना दिया, ये दो ईश्वर कहां से आ गये? अल्लाह और राम, करीम और केशव तथा हरि और हजरत नाम धराकर ईश्वरों की भीड़ कैसी? एक सोना से अनेक आभूषण बनते हैं, स्वरूपतः वे सोना ही हैं। इसी प्रकार कहने-सुनने के लिए दो मान्यताओं की स्थापना कर ली गयी, एक नमाज की और एक पूजा की; परन्तु इनमें मूलतः दो भाव नहीं है। दोनों का सार है मन कोमल बनाना। ☞

घर आ जा परदेशी

लेखक—सौम्येन्द्र दास

संत सदा सोई प्रमाणिक जो निज घर की सुधि जाने।

संत वह प्रमाणित है जिसने अपने घर की सुधि ले लिया है, अपने घर का ठौर ठिकाना जान गया है, अपने आप की पहचान कर लिया है।

तू चेत ऐ भटकता, परदेश का मुसाफिर।
अभिलाष देश तेरा, संसार यह नहीं है।।

(सद्गुरु अभिलाष साहेब)

ऐ परदेश में भटकता मुसाफिर! तेरा देश यह संसार नहीं है।

व्यावहारिक और आध्यात्मिक दो घर हैं।

व्यावहारिक घर—जो बाहर का घर है जिसमें मनुष्य स्वयं तथा परिवार के सदस्य रहते हैं।

आध्यात्मिक घर—जिसका आधार आत्मा है। जिसे निज घर कहते हैं। जहां केवल आप होते हैं। शरीर भी नहीं, केवल आप, केवल आत्मा, केवल परमात्मा। यही है परमधाम, और यहीं मिलता है परम विश्राम।

बाहर तो व्यवहार है शरीर का, जहां पत्नी पति के घर रहती है तो कहीं पति पत्नी के घर, बेटा बाप के घर में है तो कहीं बाप बेटा के घर में, चेला गुरु वे घर (आश्रम) में है तो कहीं गुरु चेला के घर में। अब तो लोग पृथ्वी में ही नहीं अंतरिक्ष में भी घर बनाना चाह रहे हैं। इतना ही नहीं सबको भगवान के घर की तलाश है। लोग स्वर्ग में निवास चाह रहे हैं। कहावत के अनुसार स्वर्ग मिलेगा तो, मगर कब? मर जाने के बाद। कब तक के लिए? पुण्य क्षीण नहीं हुआ है तब तक के लिए, फिर पुनः मृत्युलोक में आना पड़ेगा। 'क्षीणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति।'

अनादिकाल से तो यही रस्म निभाते आ रहे हैं जन्मना-मरना, जन्मना-मरना। यह तो सब किराये का घर जैसा है। एक दिन निकलना पड़ता है। नहीं चाहने पर भी चलना पड़ता है—

जिंदगी ये किराये का घर है,
एक न एक दिन बदलना पड़ेगा।
मौत जब तूझको आवाज देगी
घर से बाहर निकलना पड़ेगा।।

फिर अपना घर क्यों नहीं? सौदेबाजी का घर क्यों? दूसरे के घर में विश्राम कहां? बाहर गया थका-मांदा आदमी अपने घर में विश्राम पाता है, वैसा ही संसार से उपराम जीव-चेतन अपने स्वरूपस्थिति रूपी घर में विश्राम पाता है लेकिन घर लौटोगे कब? घर कब आओगे?

सद्गुरु अभिलाष साहेब पूर्व आश्रम में रहे तभी रामायण, वेद, महाभारत पढ़ते थे, और लोगों के बीच वैराग्य की बातें खूब करते थे। उम्र थोड़ी थी लेकिन वैराग्य की बातें खूब। तो गांव का एक आदमी व्यंग्य करता कि कब्ब? मतलब रहता था कि वैराग्य की बातें तो खूब लेकिन वैराग्य लोगे कब? गृह प्रपंच से कब छुट्टी लोगे? अपने घर में कब पहुंचोगे? दुनिया से कब लौटोगे?

सज्जनो, हमारे घर को सिर्फ हमारा इंतजार है। हमारे बिना कब से सूना पड़ा है—"सावन में रेगिस्तान

☞यहां सभी मानव एक ही जमीन पर रहते हैं, फिर यहां किसको हिन्दू कहा जाये तथा किसको मुसलमान। दोनों की एक ही जाति है—मानव-जाति।

संत कबीर का व्यक्तित्व बहुआयामी था, जो क्रांतिकारी, आध्यात्मिक, समाज सुधारक, युगद्रष्टा मनीषी, मानव एकता के प्रबल उद्घोषक, परमात्म तत्त्व के वास्तविक ज्ञाता, मानव मात्र के उद्धारक, संत कवि आदि सद्गुणों से विभूषित था। अतः ऐसे महामनीषी की सार्थकता तभी सिद्ध होगी, जब हम उनके विचारों और उपदेशों का अपने सुंदर समाज एवं जीवन के निर्माण में प्रयोग करें। ❑

लगता है। ये घर खाली मकान लगता है।'' जन्मों-जन्मों से सूना पड़ा है और आज भी हम अपने घर की तरफ नहीं चल रहे हैं, आज भी पूरा पुरुषार्थ दुनिया की तरफ है। लोग आज घर में रहकर भी, घर में कम इंटरनेट पर ज्यादा रहते हैं।

बालू के घरवा में बैठे चेतत नाहीं अयाना।
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़े बहुत सयाना।।

(बीजक)

खिलौने से कब तक खेलेंगे, नाशवान चीजों में विश्राम कहां? अपनी अचल सम्पत्ति को जानें, जहां पर सारा प्रपंच दृश्य खत्म हो जाता है जिसका सद्गुरु कबीर साहेब ने बखान किया—

असुन्न तखत अड़ि आसना, पिण्ड झरोखे नूर।
जाके दिल में हौं बसा, सैना लिये हजूर।।

(बी.सा. 28)

असुन्न का अर्थ है, जो शून्य न हो, सत्य हो, पदार्थ हो, गुण-धर्म युत सत्तावान हो। तखत–तख्त है जिसका अर्थ सिंहासन होता है। अड़ि आसना का अर्थ है अविचल निवास।

इस प्रकार अर्थ हुआ कि जीव की अविचल स्थिति सत्य में है। वह आत्मा है। उसी आत्मा का प्रकाश इंद्रिय-झरोखों से बाहर फैल रहा है। जिसकी सत्ता से आंखें देखती हैं, कान सुनते हैं, नाक सुंघती हैं, जीभ रस लेती है, त्वचा स्पर्श करती है, जिसकी सत्ता से मैं कहते हैं, वही मैं अडिग आसन है। ज्ञान-प्रकाश की सेना लेकर ''मैं'' के रूप में सभी दिलों में वही उपस्थित है। वही आश्रय स्थल है, विश्राम स्थल है।

क्या हमें अपने घर का पता है? नहीं है, तो कैसे लगेगा? कौन बतायेगा? ''अवधू सो जन हमको भावै, जो भूले को घर लावै'' (कबीर साहेब)।

हे अवधू! वह व्यक्ति, वह सद्गुरु हमें अच्छे लगते हैं, जो भूले हुए व्यक्ति को, भटके हुए साधक को घर में ला देता है। सद्गुरु से आत्मबोध की प्राप्ति होती है, और वैसा आचरण कर लेता है, आत्मबोध में ठहर जाता है, तो उसका मायावी चीजों में भटकना बंद हो जाता है। अबोधी व्यक्ति ही संसार में भटकता है।

एक बार सद्गुरु अभिलाष साहेब ध्यान में एकांत झाड़ियों के बीच बैठे थे। एक युवक उनको खोजते हुए वहां पहुंचा। कुछ आवाज हुई तो साहेब जी ने आंखें खोली। नवयुवक ने प्रणाम किया और पूछा—महात्मा जी, भगवान कब मिलेगा? गुरुजी ने कहा—तुम बिछुड़ने की तारीख बता दो तो मैं मिलने की तारीख बता दूंगा। नवयुवक एकदम शांत खड़ा रहा। अब बोले तो क्या बोले! गुरुजी ने समझाया कि बेटा, परमात्मा कभी नहीं बिछुड़ता, विस्मरण हो जाता है। कैसे? माया में फंसकर परमात्मा को भूल जाता है। कामनाओं से घिरा हुआ आदमी दुखों में भटकना नियति मान लेता है। जीवन में दुख है तो दुख के कारणों तक पहुंच नहीं पाता। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष आदि विकारों का जहां अभाव हो गया, वहीं तो परम विश्राम है, वही तो अपना घर है।

घरि रतन लाल बहु माणक लादे,
मनु भरमिआ लहि न सकाई।

(आदि ग्रंथ)

शरीर में परमात्मा के नाम के अपार खजाने रखे हुए हैं। परंतु हमारा मन बाहर विषयों में सुख का भ्रम कर लिया है, उसे छोड़ता नहीं है। यह शरीर के अंदर कभी खोज नहीं करता। फिर उस दौलत को हमारा मन कैसे प्राप्त कर सकता है। अगर कोई चीज हमारे घर के अंदर है तो घर के अंदर तलाश करने पर ही उसे पा सकते हैं। इसलिए आ अब लौट चलें अपने घर। जब कोई साधक ध्यान में बैठता है तब जो संकल्प-विकल्प आते हैं, धीरे-धीरे उनका निरोध कर देता है, उन्हें रोक देता है, मन खाली हो जाता है तो वह अपने घर में स्थित हो गया, जहां परम शांति ही शांति है। तो घर की सुधि कब लोगे? घर कब आओगे। ऐ परदेश का मुसाफिर मैं, आपसे कह रहा हूं कि कब घर आओगे? अपने घर में। घर आ जा परदेशी, तेरा देश बुलाये रे।

अहं शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वरूपम्।
अजरऽहं अमरऽहं अखण्डं अनूपम्।।

परमार्थ पथ

सद्‌गुरु ज्ञान ठिकाना है

मन का जाल भयंकर है। वह बिना काम का काम सोचता है। बिना हेतु सब पर संदेह करता है। संदेह के धुंध में अपने निकट वालों तथा संबंधित लोगों के लिए अनुचित बातें सोचता है। अव्यवस्थित सोचते-सोचते समय तो बरबाद करता ही है अंत:करण भी खराब करता है। जो लोग हमारे लिए अच्छा सोचते होंगे उनके लिए भी मन शंका करता है। इसमें मूल है अपना अहंकार और उसके पीछे चिपका हुआ अपना मिथ्या स्वार्थ। जो दूसरे पर संदेह न करते हुए केवल अपने मन को ही धुनता है और केवल अपने मन को शुद्ध रखने की चिंता रखता है, वही समझदार है। दूसरे के मन से हमारा हानि-लाभ नहीं है, अपने मन को सदैव शुद्ध रखना है।

* * *

जैसे जमीन पर पड़ी मछली पानी के लिए तड़पती है, और वह अगाध पानी में जाना चाहती है, वैसे जीव बाहरी जड़ दृश्यों में उलझकर अत्यंत दुखी है। वह भीतर आत्मानंद में पहुंचकर पूर्ण सुखी होना चाहता है। परंतु इसका भेद नहीं जानता है, और विषयों के मोह को नहीं त्याग पाता है। जो निज स्वरूप को ठीक से जानकर विषय-विरक्त हो जाता है वह कृतार्थ हो जाता है।

* * *

अहो, इस संसार में मेरा कुछ नहीं है, और किसी का कुछ नहीं है। मैं तो असंग चेतन पुरुष हूं। फिर इस संसार में मेरा क्या है! जब तक देह में हो, किसी को जानबूझकर थोड़ा भी दुख न दो। जो बन सके किसी की किसी प्रकार सेवा कर दो। किंतु किसी से कभी कुछ न चाहो। तुम्हारा शरीर निर्वाह होता रहेगा। तुम्हारा खास काम है सदैव अपनी असंगता के बोध में कालक्षेप करना। किसी बात को लेकर कभी उद्वेगित न होओ, क्योंकि सब कुछ क्षणिक है। तुम अपनी अविचल शांति की हानि न करो। वह तुम्हारा परम धन है। कौन मिला? कौन छुटा? क्या खोया? सब भ्रम है। असंग, अद्वैत, कैवल्य, निराधार, बक़ा।

* * *

कोई संसार को चेता नहीं सका है। उपदेष्टा साधक अपनी बातें कह दे; जिनको जितना सुधरना होगा उतना वे सुधरेंगे। स्वयं को पूर्ण सुधारना हमारा कर्तव्य है। हम सदैव अपने आत्मध्यान में विद्यमान रहें, इससे बड़ी उपलब्धि नहीं है।

सर्वत्र जड़दृश्य का ही पसारा है। व्यवहार में प्राणी-पदार्थ मिलते हैं। उनमें अनुकूल और प्रतिकूल मिलना स्वाभाविक है। सब समय उद्वेगशून्य होकर रहना साधना का फल है। जड़प्रकृति अनादि है। यह सदैव ताजा रहती है। इसमें निरंतर परिवर्तन चलता है। हम सदैव उद्वेग-शून्य रहें इसी दशा में रहकर स्वरूपस्थिति रहती है।

* * *

सब तरफ अनात्म और अनित्य का विस्तार दिखता है। आत्मा तो मैं ही हूं। पाने योग्य, रमने योग्य आत्मा ही है। किसी का संबंध किसी से नहीं है। सबका संबंध अपने माने हुए प्रयोजन से है। मानसिक दुख-निवृत्ति जिसका प्रयोजन है, वह उच्चतम विचार का मनुष्य है। उस प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए वह विवेकवान संतों का संबंध करता है। मानसिक दुख निवृत्ति का पूर्ण लाभ जंच जाना बहुत विशाल बुद्धि का फल है। केवल इसी काम में मनुष्य पूर्ण स्ववश है।

* * *

आध्यात्मिक दृष्टि से सारा जड़ प्रकृति-देश परदेश है और आत्मा ही स्वदेश है। परदेश जड़प्रकृति का सदैव अभाव कर स्वदेश आत्मा में स्थित रहने का निरंतर प्रयास विवेकवान की सच्ची साधना है। देह से लेकर संसार तथा पिंड से लेकर ब्रह्मांड तक कुछ अपना नहीं है। इस सत्यता का सतत स्मरण रहने से साधक सब तरफ से निष्काम हो जाता है। संपूर्ण निष्कामता ही परमानंद एवं आत्यंतिक सुख है। इस सुख में जो निरंतर विहरता है वह धन्य है। मनुष्य सब कुछ कर चुका है,

केवल उक्त काम ही नहीं किया है। जिसने यह काम किया, वह कृतार्थ हुआ।

* * *

जिन मनुष्यों के बीच में रहते हो, उनमें समता बनाये रखने की आवश्यकता है। साथियों को विश्वास में लेना चाहिए। परिवार, समाज, कंपनी, पार्टी का संचालन करना, चलाना और निभाना टेढ़ी खीर है। क्योंकि उनमें रहने वाले मनुष्यों के विचारों, स्वभावों, गुणों, कर्मों, रुचियों, योग्यताओं आदि में अंतर है। सबके सोचने के तरीकों में फर्क है। सबका अपना-अपना मानना, अहंकार और स्वार्थ भी होते हैं। ऐसी स्थिति में उनमें किसी बात में एक मत स्थापित करना और चलाना बहुत कठिन काम है। जो बहुत सहनशील, विनम्र, त्यागी तथा समतज्ञ होगा, वही इस बोझा को ढो सकता है। साधक का परम पुरुषार्थ स्वरूपस्थिति है, जिसे करने के लिए सब कुछ छोड़ना चाहिए।

* * *

इस अचानक छूट जाने वाले क्षणभंगुर संसार में किस वस्तु की कामना की जाये। जहां सब कुछ निरंतर बदलता हुआ मिट्टी में मिलता रहता है, वहां किस पदार्थ में मोह किया जाये। अपना आत्मा तो सब समय परम आनंदमय है। जब स्वयं पूर्ण आनंदमय है, तब अन्य की आवश्यकता ही क्या! स्वतः तृप्त, परमसंतुष्ट, निर्भय, सुखी। आज जितनी माया हमें दिखाई देती है, कुछ दिनों के बाद वह बदल जायेगी। बदल तो क्षण-क्षण रही है, परंतु पता चलता है कुछ दिन बीतने पर। शरीर छूट जाने पर इस संसार में हमारा कुछ नहीं रहेगा। निर्विकल्प समाधि पर पहुंचने पर वर्तमान में ही संसार-प्रपंच से रहित अपने कैवल्य पद का अपरोक्ष अनुभव होता है। साधक को नित्य निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करना चाहिए।

* * *

किसी आश्रम में धन का अधिक संग्रह उत्पात पैदा करता है। धन का उदारतापूर्वक सेवा में खर्च होते रहने से उपद्रव नहीं आता। वैराग्य घटता है, तब कलह शुरू होता है। साधु की संपत्ति वैराग्य है। उसी से उसका मन संसार से हटकर आत्मलीन होगा। आत्मलीन व्यक्ति निर्विवादी होता है। "आशा तृष्णा न मिटी, मिटा न मन अनुराग। कलह कल्पना न गयी, तब लग नहिं वैराग।"

संसार की मिथ्या चमक-दमक में मन फंसाने से अशांति होती है। जब संसार की नश्वरता देखी जाती है तब मन उससे हटकर अंतर्मुख होता है और शांति मिलती है। वस्तुतः मन की स्थिरता शांति है और यही सच्चा सुख है।

* * *

प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति की सारी चमक-दमक एवं उपलब्धि क्षणिक है। अपनी स्वरूपस्थिति स्थिर अनंत वैभव है। इसका अनुभव निर्विकल्प समाधि में होता है। साधक को नित्य शांत-एकांत समाधि में जाना चाहिए।

मुझ शुद्ध चेतन में जड़-जगत है ही नहीं, यह अनुभव निर्विकल्प समाधि में होता है। अभी-अभी समाधि में था और उसमें संसार नहीं था। समाधि से उत्थान होने पर संसार प्रतीत होने लगा, परंतु यदि महातीव्र विवेक सब समय जाग्रत है कि मेरे में शरीर-संसार नहीं है, तो हर समय मैं अनात्म-जगत से सर्वथा छुटा हुआ कैवल्य के आनंद में हूं। इस स्थिति में सदैव बने रहने वाले साधक के जीवन से कलह समाप्त हो जाता है, क्योंकि कल्पना और कुतर्क ही समाप्त हो जाता है। ऐसा साधक सदैव सावधान रहता है। जब तक देह है तब तक सतत सावधान रहने की आवश्यकता है। सावधानी ही सावधाना है।

* * *

बिना निर्विकल्प समाधि में डूबे कोई स्वरूपस्थित नहीं हो सकता। देहाभिमान तथा जगत-अध्यास की पूर्ण निवृत्ति निर्विकल्प समाधि में ही होगी। आत्मा का अनंत ऐश्वर्य निर्विकल्प समाधि में ही अनुभूत होता है। देह मेरी नहीं है। यह सदा के लिए मिट जाने वाली है, अतएव इससे संबंधित समस्त दृश्य-प्रपंच सदा के लिए छूट जाने वाला है, इसलिए मोक्ष-इच्छुक किसी भौतिक उपलब्धि में अपना तादात्म्य न करे। उपलब्ध जड़-दृश्य के प्रति तादात्म्य ही आध्यात्मिक पतन है और उसी में दुख है। सबसे सब समय असंग होकर रहना मुक्ति का परमानंद है। ❑

कहानी

घूंघट के पट खोल...

लेखिका—उपासना सियाग

गली के चौकीदार की रात के सन्नाटे को चीरती हुई तेज सीटी की आवाज ने माधव जी को जैसे खिजा दिया हो। 'आधी रात को भी चैन नहीं इन लोगों को!' 'चौकीदार का काम भी तो यही है माधव जी!' राधिका जी की आवाज गूंजी। पत्नी की आवाज सुनकर हैरान हो देखने लगे लेकिन पत्नी कहां थी वहां! उसे तो दो साल हुए गुजरे हुए। सामने तस्वीर थी उसकी चंदन की माला चढ़ी। "देख लेना जब मैं न रहूंगी, तुम मेरी तस्वीर को देख कर रोया करोगे!" "क्यों रोऊंगा! मैं पहले जाऊंगा तुमसे!" 'अजी रहने दीजिए। भगवान भी डरता है आप जैसे खतरनाक पुलिस वाले से!' तब माधव जी मूंछों ही मूंछों में मुस्कुरा दिया करते थे। 'लेकिन राधिका, मैं तुम्हारे साथ तो हमेशा अच्छे से ही रहा था फिर तुम क्यों मुझे छोड़ कर चली गई?' 'आपके साथ मैं ही तो रह सकती हूं और कोई नहीं! घर को तो पुलिस विभाग मत समझिए। बच्चे तो घोंसले की चिड़िया हैं। कल उड़ जाएंगे अपने दाने-पानी की तलाश में। आपका प्यार ही याद रहेगा इनको।' राधिका जी अक्सर समझाती थीं लेकिन माधव जी में तो एक अहम ने घर किया हुआ था। राधिका को भी एक दिन भगवान के घर से बुलावा आ गया। बच्चे अपने ठौर-ठिकानों पर व्यस्त थे। मां के मरने पर सभी आए। माधव जी को भी साथ चलने को कहा। मना कर दिया उन्होंने। बच्चों के जाने बाद वह सच में ही अकेले हो गए। पहले पत्नी थी तो अहसास नहीं हुआ कि वह अकेले हैं। एक बहादुर था उनके काम करने को। सुबह-शाम तो बाहर घूम कर समय निकल जाता लेकिन लम्बी दोपहरी और रातें कैसे निकालते। टी वी पर समाचार देखने के अलावा कुछ भी पसंद नहीं था। किसी मित्र ने सलाह दी कि कुत्ता ही पाल लो। वह भी उनको पसंद नहीं था। 'आप भी ना कैसे इंसान हैं!' राधिका जी कई बार नाराज हो उठती थीं। उनको सुनाते हुए गुनगुना उठती थीं, 'घूंघट के पट खोल रे तुझे पिया मिलेंगे!' राधिका जी की तस्वीर देखना और बातें करना ही उनका पसंद का काम बन गया था। आज भी खड़े थे कि टेलीफोन की घंटी ने तंद्रा भंग कर दी। आधी रात को किसका फोन आया? 'हैलो!' रौबीली आवाज गूंजी माधव जी की। 'आप कौन?' 'फोन तो आपने किया है। मैं क्यों बताऊं कि मैं कौन हूं?' 'मैं अनमोल बोल रहा हूं!' 'मैं तो किसी अनमोल को नहीं जानता! आधी रात को किसी को परेशान करने का क्या मतलब है?' 'परेशान तो मैं हूं!' माधव जी को वह आवाज बहुत प्यारी और आत्मीय-सी लगी। पूछ बैठे, 'क्या परेशानी है?' 'आपकी उम्र क्या है अंकल?' 'मेरी उम्र से तुम्हारी परेशानी का क्या लेना है?' 'इसलिए कि मैं जिनसे बात कर रहा हूं, वह अंकल है या दादा जी की उम्र के हैं।' 'हा, हा! मैं तो तेरे दादा की उम्र का हूं।' 'तो मैं आपको दादा जी बोलूं?' 'हां बोलो!' 'तो दादा जी! मेरे मम्मा और पापा तो पार्टी में गये हैं। भैया सो गया है और मेरा कल गणित का टेस्ट है। मुझे कोई पढ़ाने वाला ही नहीं है।' 'अच्छा, मुझे बताओ कि कौन-सा सवाल नहीं आता। मैं कागज-पेन लाता हूं।' कागज पर लिख कर अनमोल से कहा कि वह थोड़ी देर में फोन कर के समझाते हैं। चौथी कक्षा के सवाल उनके लिए मुश्किल नहीं थे। अनमोल को अच्छी तरह से समझा दिया और यह भी कि बाकी विषय भी वह समझा सकते हैं। वह जब चाहे फोन कर के पूछ सकता है। 'थैंक यू दादा जी!' 'अरे थैंक यू मत बोल, जब मर्जी हो फोन कर लेना!' दिल से खुशी महसूस हो रही थी। उस रात उन्हें बहुत अच्छी नींद आई। सुबह सैर से लौट कर आते ही

बहादुर से पूछा कि कोई फोन तो नहीं आया। यह उनकी दिनचर्या में शामिल था, हालांकि बच्चों से बात कम ही करते थे तो उनका फोन भी रविवार को ही आता था। आज तो उनको अनमोल के फोन का इंतजार था। 'दादा जी! आपको बाबूजी ने मोबाइल फोन लाकर दिया हुआ तो है, वह साथ क्यों नहीं ले जाते! रोज आते ही पूछते हो मुझसे।'

'क्यों तुझे कोई परेशानी है क्या?' 'मुझे क्यों परेशानी होगी दादा जी! लो चाय पियो। आज खाने में क्या बनाऊं?' 'आज तू अपनी पसंद का बना कर खिला!' 'मेरी पसंद का?' 'हां!!' बार-बार फोन की तरफ ध्यान था। मोबाइल फोन भी था उनके पास और बेटे ने खास हिदायत दी थी कि चाहे फोन ना करे लेकिन बिस्तर के पास रखे। कभी कोई जरूरत हो, तबीयत खराब हो तो बता तो सकते ही हैं। और नहीं तो बहादुर को ही जगा दें। लेकिन नहीं, उनको तो अपने मन की ही करनी थी। आज उनको अनमोल के फोन का इंतजार क्यों था? दो-तीन बार बहादुर से भी कहा कि अगर कोई फोन आ जाये तो उनको जगा देना। माधव जी शाम की चाय पी कर पास ही के पार्क में चले जाते थे। आज जाऊं या ना जाऊं वाली मनोस्थिति में थे कि कहीं फोन आ गया तो! 'दादा जी आप जाओ और घूम कर आओ नहीं तो रात को नींद नहीं आएगी।' पार्क में आज मौसम सुहाना लग रहा था। रात होने को थी। थोड़ी देर टी वी देखा, खाना खाया और अपने बिस्तर पर लेट गए। घड़ी की ओर देखा साढ़े नौ बजे थे। तभी फोन की घंटी घनघना उठी। 'हैलो दादा जी! मैं अनमोल बोल रहा हूं।' 'कैसे हो मेरे बच्चे?' कहते हुए गला भर आया। 'मेरा टेस्ट अच्छा ही हुआ आज, पर पूरे नंबर नहीं मिले। सिर्फ 12 नंबर ही आए 25 में से।' 'अच्छा अनमोल, तुम इतनी रात को फोन कर लेते हो, तुम्हारे मम्मी-पापा डांटते नहीं क्या?' 'नहीं डांटते!' वह हैरान हुए कि मात्र दस साल का चौथी कक्षा का बच्चा और इस तरह फोन इस्तेमाल करता है। 'यह तो गलत बात है बेटा, तुम्हें यूं किसी अनजान आदमी से बात नहीं करनी चाहिए।' 'अनजान कहां, आप तो मेरे दादा जी हैं!' उधर से बहुत प्यारी-सी हंसी उभरी। उस रात बहुत हल्का महसूस हुआ, जैसे मन का बोझ हट-सा गया हो। सुबह सैर से आते ही बहादुर से मोबाइल वाला डब्बा मंगवाया और फोन चलाना सीखा। अब तो अनमोल दिन में एक बार तो फोन करता ही था, रविवार को दो बार कर ही लेता था। एक दिन उन्होंने पूछ लिया कि उसके दादा-दादी कहां हैं। अनमोल ने बताया कि वे लोग उनके साथ नहीं रहते। 'ओह कैसे दादा-दादी हैं। बच्चों को उनकी जरूरत है और वो उनके साथ ही नहीं!" 'अच्छा तो फिर आप कैसे दादा हैं माधव जी?' राधिका जी की आवाज गूंज उठी। थोड़ा सा व्यंग्य-सा था नजरों में। उनके पोते-पोती भी तो ऐसे अकेले रहते होंगे। बेटे-बहुएं तो नौकरी करते हैं। तो क्या वो भी ऐसे हर किसी को फोन कर लेते होंगे? इस बार रविवार को जब फोन आएगा बच्चों का तो बात करूंगा, यह सोच कर आंखें मूंद लीं और सोने की कोशिश करने लगे। 'क्यों? रविवार से पहले अगर आप बात कर लेंगे तो क्या हो जाएगा!' राधिका जी बोल पड़ी। 'हां-हां कर लूंगा बात, सुबह तो होने दो!' थोड़ा सा नाराज होकर घुटने सिकोड़कर करवट ले कर लेट गए, मानो राधिका जी को जता रहे हों कि वह भी तो अकेले हैं। अगले दिन सुबह होते ही फोन मिलाया बेटे को। दूसरी ओर आवाज से आश्चर्यमिश्रित खुशी झलक रही थी। बाद में दूसरे बेटे और बेटी से भी बात की। मन में था कि उनके पास चले जाएं। फोन पर बात तो सभी ने बहुत प्यार से की लेकिन किसी ने भी एक बार भी आने को नहीं कहा। तभी अनमोल का फोन आ गया। उनको थोड़ी-सी राहत महसूस हुई। 'दादा जी आपका जन्मदिन कब आता है?' अनमोल उनसे पूछ रहा था। 'पता नहीं बेटा!' राधिका जी उनका जन्मदिन रामनवमी को मनाया करती थीं कि जब जन्मदिन पता न हो तो खुद ही अच्छा-सा दिन जान कर जन्मदिन मना लेना चाहिए। राधिका के जाने के बाद बच्चे रामनवमी को आ जाते

थे। छुट्टी भी तो होती थी उनकी! 'तुम्हारा जन्मदिन कब आता है?' 'चार दिन बाद है! मैं आपको लेने आऊं?' 'नहीं! मैं क्या करूंगा बच्चों में!' 'प्लीज दादा जी, मना मत कीजिए। मैं आपको लेने आ जाऊंगा और छोड़ भी जाऊंगा!' 'ठीक है बेटा।' इतनी प्यारी आवाज वाले बच्चे से वह मिलना चाहते थे। अनमोल के जन्मदिन पर उन्होंने उसे सुबह ही आशीर्वाद दे दिया। दोपहर में दो बजे आने को कह अनमोल ने फोन बंद कर दिया। अब छह घंटे इंतजार के थे। इस बीच उसके लिए पास के बाजार से तोहफा भी ले आए। दो बजे के करीब मुख्य दरवाजे के पास कुछ आवाजें सुनाई दीं तो वह समझ गये कि अनमोल आ गया है। वह उठ कर कमरे के दरवाजे तक आये ही थे कि अनमोल उनके सामने था। दादा जी कह कर लिपट गया। माधव जी तो जैसे रो ही पड़े। 'बाबूजी!' जानी-पहचानी आवाज सुन कर आंसू पोंछते हुए सिर उठाया तो देखा उनका बड़ा बेटा था। आंखों में पानी भरे मुस्कुरा रहा था। आगे बढ़ कर गले लग कर रो पड़ा। बेटे ने बताया कि यह सब उसके कहने पर ही हुआ था। अनमोल को फोन पर बात करने को उसने ही कहा था। 'बाबूजी, मुझे यह नहीं मालूम था कि यह इतना बड़ा कलाकार भी निकलेगा।' 'इसकी बातों ने ही तो मुझे मोह लिया था लेकिन इसका नाम अनमोल है, यह मुझे क्यों नहीं मालूम?' 'क्यूंकि आप इसे इसके निक नेम गुड्डू से जानते हैं!' 'ओह, तभी मुझे बुद्धू बना दिया गया!' माधव जी के दिल से हंसी निकल रही थी आज। 'दादा जी, अब आप मेरे साथ ही रहेंगे!' 'हां बाबूजी, आप अब हमारे साथ नहीं, बल्कि हम आपके साथ रहेंगे।' माधव जी ने भी हां भर दी। घर से चलने लगे तो बोले कि रुको तुम्हारी मां को भी साथ ले चलो, नहीं तो वह भी अकेली हो जायेगी। अंदर से तस्वीर ले आए। उनको लगा कि राधिका जी गा रही है...घूंघट के पट खोल रे, तुझे पिया मिलेंगे...।

(दैनिक 'राजस्थान पत्रिका' 4-1-2017 से साभार)

जन्नत!!!

रचयिता—श्री मधुप पाण्डेय

कश्मीर में
पांच बूढ़ों-दस बच्चों
अनगिनत मां बहन बेटियों की
लाशों को हवा में उछालकर।
वह थिरकने लगा
कुटिल करतूतों की ताल पर।
फिर उसने दूर बैठे
आकाओं को सलाम किया।
और मरकर जन्नत मिलेगी
इस भरोसे पर
बदन पर लिपटी बारूद से
अपने आपको उड़ा दिया।
चिथड़े बन गये शरीर को
समेट कर वह पहुंचा
खुदा के द्वार, लगायी गुहार—
'कहाँ है जन्नत
कहाँ है मेरा घर द्वार?'
भीतर से
गहन-गंभीर आवाज आयी—
''पगले, धरती पर ही जन्नत
का कर दिया था इंतजाम।
उसे दिया 'कश्मीर' का नाम।
तू धरती की जन्नत—
जो कश्मीर है
उसे नरक बनाकर सोचता है।
और कहीं जन्नत खोजता है।
तो सुन ले,
तेरी करतूतें नरक की है
इसलिये तू नरक का
हर दंड सहेगा।
तू नरक के ही लायक है
हमेशा नरक में ही रहेगा!!''

अनूठा सच

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

है अनोखी बात यह, पर मानिए बिल्कुल सही है।
बाहरी परिचय बहुत, पर स्वयं से परिचय नहीं है॥

पशु-पक्षी बन्धु-बान्धव, बाग-वन सब ज्ञान में हैं।
शत्रु-मित्र मेरा कौन है लाभ-हानि सब ध्यान में हैं॥
ग्राम-टोला देश-दुनिया, के विषय में जानते हैं।
जिन्न काली प्रेत टोना, भूत बैगा मानते हैं॥
टंट घंट छापा तिलक, स्नान पूजा रोज करते।
देव-दर्शन तीर्थ स्नानार्थ गामी रोज मरते॥
यज्ञ जप कीर्तन कथा के लाभ को भी जानते हैं।
कर दिखाते हैं उसे, मन में जिसे भी ठानते हैं॥
मानते सर्वज्ञ खुद को, किसी से भी कम नहीं है।
बाहरी परिचय बहुत, पर स्वयं से परिचय नहीं है॥

मन्दिर मस्जिद गिरजाघर में बार-बार तू टेकता सिर।
वहीं अन्तःकरण में, तेरे ही है प्रत्यक्ष हाजिर॥
सभी जीव सजाति इसको, अभी तक तू नहीं जाना।
पद-प्रतिष्ठा रूप धन को ही सदा सर्वस्व माना॥
स्वयं की हित साधना में, लगे हैं दिन रात प्यारे।
स्वार्थ में जकड़े पड़े हैं, बन्धु भी हो गये न्यारे॥
जो पड़ोसी देशवासी, उन संग रहने न आया।
बात क्या करुणा क्षमा की, कभी न वह प्रेम पाया॥
खोजते दिन-रात क्या अन्यत्र भी मानव कहीं है।
बाहरी परिचय बहुत, पर स्वयं से परिचय नहीं है॥

कौन घटना कब घटी, इस का पता रहता सदा है।
इससे जी उबता नहीं, यादों का गट्ठर सिर लदा है॥
नापते आकाश सागर, देखते त्रैलोक्य को हैं।
चाहते उन पर पहुंचना दूर से भी दूर जो हैं॥
ध्वनि और प्रकाश की गति बहुत पहले नाप डाले।
मन की गति के विषय में, अब तक नहीं कुछ पड़ा पाले॥
देखने सुनने समझने हेतु बाहर नाचते हैं।
शुद्धता के लिए बाहर, वस्तु को नित जांचते हैं॥
देखते अन्दर नहीं कि क्या गलत और क्या सही है।
बाहरी परिचय बहुत, पर स्वयं से परिचय नहीं है॥

सिंह भालू व्याघ्र चीता, को तू हिंसक मानते हो।
काम क्रोध मद लोभ बैरी, को नहीं पहचानते हो॥
भय कभी जलने की, अग्नि को सदा तू दूर रखते।
जो जलाती सदा अपनी आग को क्यों न परखते॥
रोग टोना भूत बैरी से, दुःखों को मानते हो।
दुःखकारण दोष अपने को नहीं तू जानते हो॥
बाद मृत्यु स्वर्ग-नरक, जिन का पता न मानते हो।
देव प्रभु से मिलन को, वन तीर्थ पर्वत छानते हो॥
'जीव है यह ब्रह्म ही', वेदान्त का कहना यही है।
बाहरी परिचय बहुत, पर स्वयं से परिचय नहीं है॥

देश है वह कौन जिसको आज तक तूने न देखा।
रोग बोलो कौन है, जिस को नहीं तूने परेखा॥
यहीं बैठे देखते औ, बात कर लेते कहां से।
सूचना को तुरत पाते, चाहते हो जब जहां से॥
यंत्र मानव काम करता, प्राप्त कर तेरा इशारा।
यान लाखों दूर पर, कन्ट्रोल तेरे हाथ सारा॥
कौन हूं कर्त्तव्य क्या औ किस लिए आना हुआ।
बिना जाने दोगे चल, यह हार कर जीवन जुआ॥
क्यों न सोचे जीते जी, क्या लक्ष्य जीवन का यही है।
बाहरी परिचय बहुत, पर स्वयं से परिचय नहीं है॥

अच्छाई से उत्थान होता है बुराई से पतन

लेखक—डॉ. रणजीत सिंह

गलत कार्य करने से मनुष्य की शान्ति में विक्षोभ-व्यवधान उत्पन्न होता है और आत्मग्लानि पैदा होती है। गलत काम से मनुष्य तो स्वयं दुःखी होता ही है उसके आस-पास वाले भी दुःखी होते है। जैसे तालाब के शांत पानी में पत्थर फेंकने से लहरें पैदा होती हैं तो किनारे पर आकर शांत होती हैं। गाड़ी के आगे रोड़ा रखने पर गाड़ी बाधित होती है। एक छोटे पक्षी के टकराने पर हवाई जहाज भी दुर्घनाग्रस्त हो जाता है। ठीक इसी तरह से आत्मग्लानि से ग्रसित मनुष्य आत्मदर्शन से वंचित रहता है। जैसे उबलते या गन्दे पानी में मनुष्य को अपना प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ता है। जबकि सही कार्य करने में मनुष्य को वह आत्मसंतुष्टि एवं सुखानुभूति मिलती है कि उसका दिल बाग-बाग हो जाता है।

कभी भी कृत, कारित एवं अनुमोदित हिंसा से किसी की आत्मा को नहीं दुखाना चाहिए। जब मनुष्य कोई भी गलत काम करता है तो उसका सुख, शांति एवं अमन-चैन तथा रातों की नींद जाती रहती है तथा वह बेचैनी, घबराहट वाला जीवन जीते हुए शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जो सभी कार्य ठोंक-बजाकर करते हैं उनको इतना सुख, शांति, अमनचैन मिलता है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो यह कहे कि मैंने अच्छा किया था मुझे बुरा मिला अथवा मैंने बुरा किया था मुझे अच्छा मिला अर्थात प्रकृति में अच्छा करने का अच्छा तथा बुरा करने का बुरा परिणाम प्राप्त होता है। कहावत भी है कि "बुरे काम का बुरा नतीजा, क्यों रे चाचा क्यों भतीजा।"

दीपावली के अवसर पर महिलाएं रात्रि के चौथे पहर में गन्ने से सूप पीटकर दारिद्र्य को दूर भगाती हैं तथा देवताओं का आवाहन करती हैं, हज यात्रा पर हाजी इबलीस (शैतान) पर कंकड़ मारते हैं ताकि इस दुनिया से शैतान का नामोनिशान मिट जाये जबकि अपने दिलो दिमाग से शैतान को निकालने की आवश्यकता है। मनुष्य गलती तो स्वयं करता है और बुरा दूसरों को समझता है। प्रसिद्ध रूसी विद्वान लियो टालस्टाय ने कहा है कि मनुष्य दूसरों को सुधारना चाहता है लेकिन स्वयं नहीं सुधरना चाहता है। तुलसीदास जी ने कहा है कि "पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" आचरण बल ही सर्वोत्तम बल है।

एक बार एक व्यक्ति ने किसी पुस्तकालय से दुर्लभ चित्र चुरा लिया लेकिन वह पकड़ा गया। इससे उसे सजा एवं जुर्माना दोनों हुआ। जिस देश का वह निवासी था वहां के लोगों का सम्बन्धित पुस्तकालय में जाना प्रतिबन्धित कर दिया गया। एक आदमी की गलती से पूरे देश पर प्रतिबन्ध लगा। कहावत भी है "एक सड़ी मछली पूरे तालाब को गंदा कर देती है।" हमारे अच्छे आचरण एवं व्यवहार से विदेशों में हमारे देश की अच्छी छवि बनती है, लेकिन गलत कार्य करने पर स्वयं के साथ-साथ देश की छवि भी खराब होती है। देश की अस्मिता, आस्था और विश्वास वहां के निवासियों के आचरण एवं व्यवहार पर टिका होता है। अतः मनुष्य को सदैव चाहे वह देश में हो या विदेश में अच्छा आचरण, व्यवहार व सुकर्म करना चाहिए न कि बुरा व्यवहार व कुकर्म।

एक बार कोई संत जापान में रेल से यात्रा कर रहे थे। उनको फल खाने की इच्छा हुई तो उन्होंने हर स्टेशन पर फल की तलाश किया लेकिन उन्हें फल नहीं मिले तब वह निराश होकर कहने लगे कि यहां जापान में तो फल मिलते ही नहीं हैं। यह सुनकर एक जापानी ने किसी भी तरह एक टोकरी फल लाकर संत के समक्ष रख दिया। तब संत ने कहा कि मेरे अथक प्रयास के बाद भी फल नहीं मिले लेकिन आपको फल कहां से मिल गये, तब उस जापानी महाशय ने कहा—आप

अपने देश भारत जाने पर वहां कहते कि जापान में फल नहीं मिलते हैं तो इससे मेरे देश की बदनामी होती। इसीलिए मैंने अपने देश को बदनामी से बचाने के लिए फल की व्यवस्था की है।

पहले गांवों में किसी विशेष मौके पर समस्त ग्रामवासी, रिश्ते-नातेदार मिलजुलकर उस कार्य को सफल बनाते थे। उस व्यक्ति विशेष की इज्जत को अपनी इज्जत समझते थे तथा अपने गांव की शान में बट्टा नहीं लगने देते थे। वे कहते भी थे कि इससे हमारे ग्राम की छवि अच्छी बनेगी। लोग अपने गांव की इज्जत के लिए मर मिटने को तैयार रहते थे। एक व्यक्ति के सांप काटने पर पूरा गांव इकट्ठा हो जाता था लेकिन आज ऐसी भावनाएं समाज से नदारद हैं। देहातों में कहावत है कि "सांझइ देइ सकारइ पावइ, पूत भतार के आगे आवइ" अर्थात जो काम हम शाम को करते हैं उसका परिणाम सुबह मिल जाता है।

पूरा ब्रह्माण्ड कार्य-कारण व्यवस्था या ऋत के द्वारा संचालित है। जरा सा भी नियमों में हेरफेर का दण्ड मनुष्य को अवश्य मिलता है। संसार में प्रत्येक चीज के जोड़े बनाये गये हैं और उन जोड़ों में संतुलन बनाकर ही अपना अस्तित्व कायम रखा जा सकता है। मनुष्य को किसी को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। अन्यथा उसकी आत्मा से निकली हाय से मनुष्य दुख को प्राप्त होता है। जब मनुष्य आत्मग्लानि करता है तो उसके अंदर ऐसे-ऐसे रसायन पैदा होते हैं जिनको शरीर से बाहर निकालकर किसी जीवधारी में इंजेक्ट कर दिया जाये तो उसकी मौत हो जाती है। उसके आस-पास आने वाले मनुष्यों की आत्माओं में विक्षोभ पैदा हो जाता है।

निष्कर्ष स्वरूप यही कहा जा सकता है कि मानव को कभी ऐसे बुरे कर्म नहीं करना चाहिए जिससे किसी का दिल दुखे। उसे अपने सुकर्म से सभी मनुष्यों की आत्माओं को राजी-खुशी रखना चाहिए जिससे देश व समाज का कल्याण होगा। इसी में मानवता की भलाई निहित है। ❑

आदर्श जीवन

सम्राट की दयालुता

पश्चिम जर्मनी की बात है। एक स्त्री का पति चल बसा। घर में गरीबी थी। उसका इकलौता बेटा मां से रोज पूछता, मेरे पिता जी कहां हैं? वह आंखों में आंसू भरकर बोलती—वे भगवान के घर गये हैं। लड़का बोलता—मां, मुझे एक कागज दे, पिता जी का पता बता दे मैं उन्हें पत्र लिखूंगा। रोज-रोज जिद करते देख मां ने एक कागज दे दिया।

बेटे ने पत्र लिखा—'पूज्य पिता जी! तुम्हारे जाने के बाद हम कितने गरीब हो गये हैं। घर में खाने के लिए दाने नहीं हैं और तुम भगवान के घर में आराम कर रहे हो। जल्दी आओ, तुम्हारे लिए मां कितना दुखी है और मैं आंसू बहाता हूं। पत्र का उत्तर जल्दी देना, मैं इन्तजार कर रहा हूं।'

पत्र लिखकर लड़का कहता है—मां, मैं इसे डब्बे में डाल आता हूं। वह पत्र डालने जाता है, परन्तु डब्बा जरा ऊंचा था। उसका हाथ नहीं पहुंच रहा था। तभी उधर से सादे वेष में जर्मनी के सम्राट निकले। उन्होंने लड़के की परेशानी देखी तो वे बोले—ला मुन्ना! पत्र मैं डाल देता हूं। डब्बे में डालने से पहले उन्होंने पत्र को पढ़ा तो सब कुछ समझ गये। फौरन दूसरे लिफाफे में सोने की गिन्नी और छोटा-सा पत्र रखकर बोले, बेटा! यह रहा तुम्हारे पत्र का जवाब। लड़का दौड़ता हुआ घर आया और मां से बोला—मां, मां! पिता जी तक खत पहुंच गया और जवाब भी आ गया। यह देखकर उसने लिफाफा खोला, उसमें सोने की एक गिन्नी और एक छोटा-सा पत्र था। पत्र में लिखा था—बहिन! तुम्हारी तकलीफ में हार्दिक सहानुभूति है। यह छोटी-सी वस्तु भेजी है, जब भी जरूरत हो इस सेवक को कहना। नीचे सम्राट का हस्ताक्षर देखकर बहन की आंखों में आंसू छलछला आये।

प्रस्तुति-रामदास

बीजक चिंतन

संसार की विपरीतता

शब्द-93

बाबू ऐसो है संसार तिहारो, इहै कलि ब्यौहारो ॥1 ॥
को अब अनुख सहत प्रतिदिन को, नाहिन रहनि हमारो ॥2 ॥
सुमृति सोहाय सबै कोइ जानै, हृदया तत्त्व न बूझै ॥3 ॥
निर्जिव आगे सर्जिव थापे, लोचन किछउ न सूझै ॥4 ॥
तजि अमृत विष काहेक अँचवै, गाँठी बाँधिन खोटा ॥5 ॥
चोरन दीन्हों पाट सिंहासन, साहुन से भौ ओटा ॥6 ॥
कहहिं कबीर झूठे मिलि झूठा, ठग ही ठग ब्यौहारा ॥7 ॥
तीनि लोक भरपूरि रहा है, नाहीं है पतियारा ॥8 ॥

शब्दार्थ—कलि= कलिकाल, पापबुद्धि। अनुख= झंझट, खुराफात। रहनि= रहना। सुमृति= स्मृतियां, धर्मशास्त्र। सोहाय= अच्छा लगता है। तत्त्व= सचाई। निर्जिव= मिट्टी-पत्थर के देवी-देवता। सर्जिव= सजीव देह-धारी। थापे= वध करते। अँचवै= आचमन, पीना। खोटा= असत्य, बुरा। चोरन= वंचक गुरुआ। साहुन= विवेकी संत। ओटा= मुख छिपाना।

भावार्थ—हे बाबू! तुम्हारी दुनिया बड़ी अजीब है। यहां तो सर्वत्र पापबुद्धि का व्यवहार हो रहा है।। 1 ।। तुम लोगों के बीच में रोज-रोज की खुराफात कौन सहे! यहां तो हमें अपने रहने लायक नहीं लगता।। 2 ।। स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों की हिंसा-विधायक बातें सबको अच्छी लगती हैं। ये लोग हृदय से सच्चाई को नहीं समझना चाहते।। 3 ।। ये बेजान जड़ देवी-देवताओं के सामने पूजा तथा यज्ञ के नाम पर जीवधारी पशु-पक्षियों की हत्या करते हैं। इनकी आंखों से कुछ नहीं सूझता।। 4 ।। ये अमृत को त्यागकर जहर क्यों पीते हैं और सत्य को त्यागकर अपनी गांठ में बुरी वस्तु क्यों बांधते हैं!।। 5 ।। ये लोग छलने वाले वंचक गुरुओं का आदरकर उन्हें पाटला और सिंहासन देते हैं और विवेकी संतों से अपने मुख छिपाते हैं।। 6 ।। कबीर साहेब कहते हैं कि झूठे लोग झूठों से मिल रहे हैं तथा ठग लोग ठगों से मिलकर ठग-विद्या का व्यवहार कर रहे हैं।। 7 ।। सारे संसार में तो भ्रांति ही भरी है। ये सत्य पर विश्वास करने वाले नहीं हैं।। 8 ।।

व्याख्या—"बाबू ऐसो है संसार तिहारो, इहै कलि ब्यौहारो।" क्षत्रियों को, पढ़े-लिखे लोगों को या आदरणीय लोगों को 'बाबू' कहा जाता है। प्यार से छोटों को भी बाबू कहा जाता है। शायद कुछ पढ़े-लिखे लोग जिनमें ब्राह्मण कहलाने वाले भी रहे हों, कबीर साहेब के पास आये हों और उन्हें संबोधित कर उन्होंने कहा हो कि हे बाबू! तुम्हारा संसार ऐसा ही है। तुम लोगों का जगत बड़ा विचित्र है। मैं तो मानता हूं कि जो तुम लोग धर्म के नाम पर निर्दयता का तांडव करते हो यही कलि-व्यवहार है। कलि और कुछ नहीं है, किन्तु तुम लोगों का व्यवहार ही कलि हो गया है।

"को अब अनुख सहत प्रतिदिन को, नाहिन रहनि हमारो।" तुम लोगों के बीच में रहकर कौन रोज-रोज झंझट सहे। तुम लोगों के बीच में हमें रहने लायक नहीं है। मानसिक दुर्बलतावश लोग जो गलत आचरण करते हैं वह तो गलत है ही, धर्म का नाम लेकर बड़ा-बड़ा पाप होता है और इसे देखकर मन को बड़ा कष्ट होता है। 'अनुख' के अर्थ झंझट, खुराफात या दुख होते हैं। हत्या तो किसी प्रकार भी उचित नहीं है। परन्तु धर्म का नाम लेकर हत्या करना बड़े दुख की बात है।

"सुमृति सोहाय सबै कोइ जानै, हृदया तत्त्व न बूझै।" सुमृति स्मृति का अपभ्रंश शब्द है। अतएव सुमृति का अर्थ स्मृति है। स्मृति कहते हैं धर्मशास्त्र को। धर्मशास्त्रों में यज्ञ में तथा जड़ देवी-देवताओं के सामने पशु-पक्षियों का वध करने-कराने का विस्तृत विधान है। साहेब कहते हैं कि ये बातें लोगों को बड़ी अच्छी लगती हैं, परन्तु वे हृदय से सच्चाई नहीं समझते कि जीव-हत्या महापाप है। यह एक विचित्र बात है कि पुराकाल से यज्ञ, देवपूजन तथा अतिथि-सत्कार के नाम पर घोड़ों, बैलों, सांड़ों, गायों, भेड़ों, बकरियों आदि की बलि चढ़ाकर उनके मांस

खाने का विधान किया था।[1] वसिष्ठ धर्मसूत्र ने तो यहां तक कह डाला कि श्राद्ध या देवपूजनों में मारे गये पशु का मांस यदि यति को दिया जाये और वह न खाये तो उसे असंख्य वर्षों तक नरक में रहना पड़ता है।[2] मनु ने तो उसे इक्कीस जन्मों तक ही नरक में रहना बताया जो श्राद्ध तथा मधुपर्क के मांस को नहीं खाता।[3] मनु ने कहा—"ब्राह्मण यज्ञ के लिए तथा रक्षणीय परिवारों की रक्षा के लिए पशु-पक्षियों का वध करे, ऐसा अगस्त्य ऋषि ने पहले किया था।"[4]

कबीर साहेब के जमाने में ब्राह्मण तथा अन्य द्विजाति लोग ये सारे उदाहरण दे-देकर यज्ञ एवं देवपूजन के नाम पर जीव-हत्या करते थे तथा मांस-भक्षण करते थे। धीरे-धीरे गाय एक उपयोगी जानवर सिद्ध होने से वैदिक युग में ही उसे आगे चलकर अघन्या[5] (न मारने योग्य) घोषित कर दिया गया था। पहले दूध देने वाली गायों का वर्जन हुआ, फिर सभी गायों का। मनुस्मृति में जीव-हत्या तथा मांसभक्षण के त्याग की भी बात बतायी गयी।[6] वेदव्यास को खिन्न देखकर नारद उनसे कहते हैं—"संसारी लोग स्वभाव से ही विषयों में फंसे हुए हैं। धर्म के नाम पर आपने उन्हें निंदित (पशुहिंसायुक्त) सकाम-कर्म करने की भी आज्ञा दे दी है, यह बहुत ही उलटी बात हुई; क्योंकि मूर्ख लोग आपके वचनों से पूर्वोक्त निंदित कर्म को ही धर्म मानकर 'यही मुख्य धर्म है' ऐसा निश्चय करके उसका निषेध करने वाले वचनों को ठीक नहीं मानते।"[7]

भारतीय परंपरा की यह विशेषता है कि वह विचारक होती है। यदि देश, काल तथा ज्ञान के कारण पहले के आचरण अब उचित न लगते हों तो उन्हें त्यागने में वह हिचक नहीं करती। मुसलमानों में ईश्वर के नाम पर पशुवध करना आज भी बंद न हो सका। मक्का में पर्व के दिन आज भी लाखों जानवर काट डाले जाते हैं। भारत में बकरीद के दिन लाखों पशु मेहरबान ईश्वर के नाम पर बड़ी बेरहमी के साथ मौत के घाट उतार दिये जाते हैं; परन्तु ब्राह्मण परंपरा में जिनके शास्त्रों में पशुवध का घोर विधान है, उसे वे करीब-करीब छोड़ चुके हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से तो 'कलिवर्ज्य' की सूचियां बनने लगी थीं कि कलिकाल में क्या-क्या त्यागने योग्य है। डॉ. पांडुरंग वामन काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में कलिवर्ज्य की सूची में 55 विषय रखे हैं जो धर्मशास्त्रों से संकलित हैं। उन्होंने कलिवर्ज्य के लम्बे अध्याय के अन्त में लिखा है—

"उपर्युक्त कलिवर्ज्य संबंधी विवेचन उन लोगों का मुंहतोड़ जवाब है जो 'अप्रगतिशीलपूर्व' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। प्राचीनकाल के अत्यधिक स्थिर समाजों के अंतर्गत भी सामाजिक भावनाओं एवं आचारों में पर्याप्त गंभीर परिवर्तन होते रहे हैं। बहुत-से ऐसे आचार एवं व्यवहार, जिनके पीछे पवित्र वेदों (जो स्वयमुद्भूत एवं अमर माने गये हैं) का आधार था, और जिनके पीछे आपस्तंब, मनु एवं याज्ञवल्क्य की स्मृतियों की प्रामाणिकता थी, वे या तो त्याज्य ठहराये गये या

---

1. ऋग्वेद 10/86/14; 10/27/2; 10/79/6; 10/91/14; 8/43/11; तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/9/8; शतपथ ब्राह्मण 3/1/2/21; ऐतरेय ब्राह्मण 6/8; वेदांत सूत्र 3/1/25; बृहदारण्यक उपनिषद् 6/4/18; शतपथ ब्राह्मण 11/7/1/3; आपस्तंब धर्मसूत्र 2/7/16/25; आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/24/22-26; वसिष्ठ धर्मसूत्र 4/8; हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र 2/15/1; बौधायन गृह्यसूत्र 2/5; बैखानस 4/3; आश्वलायन गृह्यसूत्र 4/9-10; गौतम 17/27/31; याज्ञवल्क्य 1/177; विष्णुधर्मसूत्र 51/6; वाल्मीकीय रामायण किष्किंधाकांड 17/39; मार्कंडेय पुराण 35/2-4। धर्मशास्त्र का इतिहास 1/420-422।
2. वसिष्ठ धर्मसूत्र 11/34; धर्मशास्त्र का इतिहास 1/422।
3. मनुस्मृति 5/35।
4. यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः।
   भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ।।
   (मनुस्मृति 5/22)
5. ऋग्वेद 1/164/27-40; 4/1/6; 5/83/8 8/69/21; 10/87/16। धर्मशास्त्र का इतिहास 1/420।
6. मनुस्मृति, अध्याय 5, श्लोक 48, 49, 50, 51, 55।
7. जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः।
   यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ।।
   (भागवत 1/5/15, टीका गीताप्रेस)

प्रचलित मनोभावों के कारण गर्हित माने गये। महान विचारकों ने कलियुग के लिए ऐसी व्यवस्थाएं प्रचलित कीं जिनके फलस्वरूप धार्मिक आचार-विचारों एवं नैतिकता संबंधी भावनाओं में यथोचित परिवर्तन किया जा सका। कलिवर्ज्य वचनों ने ऐसे लोगों को भी पूर्ण उत्तर दिया जो धर्म (विशेषतः आचार धर्म) को अपरिवर्तनीय एवं निर्विकार मानते रहे हैं। इस अध्याय के विवेचन से पाठकों को लगा होगा कि वेद एवं प्राचीन ऋषियों तथा व्यवहार-प्रतिपादकों के अत्यंत प्रामाणिक सिद्धांत अलग रख दिये गये, क्योंकि वे प्रचलित विचारों के विरोध में पड़ते थे। जो महानुभाव भारतीय समाज से संबंध रखने वाले विवाह व उत्तराधिकार आदि विषयों में सुधार करना चाहते हैं, उन्हें इस अध्याय में उल्लिखित बातें प्रेरणा देंगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। हमने यह देख लिया है कि कलिवर्ज्य उक्तियों के रहते हुए भी आज बहुत-से घोर और घृणित आचार हमारे समाज में अभी तक घुन की तरह पड़े हुए हैं, यथा मातुल-कन्या-विवाह, संन्यास, अग्निहोत्र और श्रौत पशुयज्ञ। यद्यपि ये अब उतने प्रचलित नहीं हैं।"[1]

कबीर साहेब के काल से दो-तीन सौ वर्ष पहले से ही कुछ पंडितों द्वारा कलिवर्ज्य के सिद्धांत को लेकर धर्म के नाम पर काटे जाने वाले पशु-पक्षियों पर दया दिखाई जाने लगी थी, परंतु भ्रांत और मांसभक्षण के लोभी पंडितों और जनता ने उसे काफी चालू रखा था। कबीर साहेब के समय में पुराने धर्मशास्त्रों के प्रमाण दे-देकर लोग देवपूजन एवं यज्ञ के नाम पर पशु काट-काटकर खा रहे थे। इन्हीं सब बातों से करुणाविगलित होकर उन्होंने कहा कि हे बाबू! तुम्हारी दुनिया विचित्र है। यह संसार तो हम-जैसे लोगों को रहने लायक ही नहीं है। यहां तो स्मृतियों एवं धर्मशास्त्रों के हिंसा-मांसाहारपरक उदाहरण ही लोगों को अच्छे लगते हैं। इनके हृदय में सच्चाई का ज्ञान तो होता ही नहीं है कि जीव-हत्या धर्म कैसे हुई! वे कैसे ईश्वर या देवी-देवता हैं जो निर्दोष मूक प्राणियों की हत्या करने से खुश होते हैं। देवी-देवता तो निर्जीव मिट्टी-पत्थर की पिंडी हैं और उनके सामने जीवधारी की हत्या कर देना यह तो मानो भीतर-बाहर की चारों आंखों का फूट जाना है। इस निर्दयता का तांडव अभी भारत आजाद होने के पहले तक अनेक ब्राह्मण कहलाने वालों के घरों तक में भी होता रहा। आज भी भारत में यत्र-तत्र यह चल रहा है और बिहार तथा विशेषतः बंगाल एवं उड़ीसा में देवपूजन में जीववध तथा मांसाहार कम नहीं हैं। ये पंक्तियां जहां कलकत्ता के न्यू अलीपुर में बैठकर लिखी जा रही हैं, पास के काली-मंदिर में अभी भी दयामूर्ति माता काली की पूजा में रक्त की नालियां बहती हैं। इस विज्ञान युग में जंगलीयुग कहां समाप्त हुआ है! भारत से लगे हुए विश्व में एकमात्र हिन्दूराष्ट्र नेपाल में देवपूजन में घोर जीववध होता है। श्री निर्मल साहेब ने ठीक ही कहा है—"जड़ के पुजारी चेतन का लोचन फुटा है। रंचक न दया-धर्म दुनिया को लुटा है।"

"तजि अमृत विष काहेक अँचवै, गाँठी बाँधिन खोटा। चोरन दीन्हों पाट सिंहासन, साहुन से भौ ओटा।" साहेब कहते हैं कि ये धार्मिक कहलाने वाले लोग अमृत को छोड़कर जहर क्यों पीते हैं! दया अमृत है, अहिंसा अमृत है, उसे छोड़कर हिंसा और हत्या जो जहर है उसे क्यों स्वीकार कर रहे हैं! दूसरों को पीड़ा देने से पीड़ा मिलेगी यह प्रकृति का विधान है। पीड़ा हमारे लिए जहर है, तो दूसरों के लिए भी जहर है। आत्मदेव ही सच्चा देव है इसे भूलकर मिट्टी-पत्थर की पिंडियों को देवता मानकर मानो सत्य को त्यागकर खोटा सौदा अपने पल्ले बांध रहे हैं।

जीववध को धर्म बताकर हिंसारूपी कुकृत्य करना-कराना मानो झूठे और ठगों का परस्पर मिलकर असत्य और ठगाई का व्यवहार करना है। धर्म के नाम पर सब जगह तो धांधलेबाजी चल रही है। सही बातों को समझने तथा उस पर विश्वास करने वाले कम लोग हैं। ❑

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2, पृ. 1009।

मानसिक तनाव के शमन में मानसिक भावनाओं का महत्त्व

लेखक—डॉ. श्री ओ.पी. द्विवेदी एवं डॉ. श्री राजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी

जीवन में पल-पल नवनिर्माण हो रहा है, उत्साह की तरंगों से मन को तरंगित एवं आप्लावित करते रहें। जीवन एक सुनहरा वरदान है। मानव को स्वस्थ एवं सुखी रहने के लिए ही यह स्वर्णिम अवसर मिला है। जीवन से बढ़कर अधिक मूल्यवान कुछ भी नहीं है। यदि आपका समस्त लुट गया है और जीवन शेष बचा है तो मानिये कुछ भी नहीं लुटा और सब कुछ शेष रह गया। हमें अपने जीवन का महत्त्व समझना चाहिए। जीवन में रुचि लेना आद्य एवं सर्वप्रथम आवश्यकता है। धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान, योग, भोग, त्याग, मुक्ति आदि सब कुछ बाद में है। जो जीवन में रुचि नहीं लेता है, वह जिन्दगी का बोझ ढोनेवाला दयनीय पशु है, कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्रत्येक मनुष्य में महानता की अत्यन्त सम्भावनाएं छिपी पड़ी हुई हैं, अतः मनुष्य को अपनी महत्ता पहचानकर उसके अनुरूप चिन्तन और कर्म करना चाहिए। कोई मनुष्य एक दिशा में महान हो सकता है तो कोई अन्य मनुष्य किसी दूसरी दिशा में आगे बढ़ सकता है। जिस मनुष्य के पास जो कुछ गुण-शक्ति है, वह उसी को लेकर ऊंचा उठे तभी उसकी सफलता और सार्थकता प्रमाणित हो सकती है। सदा रोते रहने का स्वभाव मनुष्य को दयनीय बना देता है। मनुष्य को अपने अपमान का भय, हानि का भय, रोग का भय, मृत्यु का भय, अनेक प्रकार का भय घेरे रहता है तथा सारा जीवन यूं ही रोते-डरते बीत जाता है। भय बार-बार मन को विचलित कर देता है, जो भूखे भेड़िये की भांति स्वास्थ्य एवं सुख को खा जाता है तथा चिन्ता हमें पंगु बना देती है। काल्पनिक चिन्ताओं में हम अपनी जीवनी-शक्ति का क्षय करते ही रहते हैं। अतः हम मनुष्यों को घृणा, भय, क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, शोक, क्लेश आदि मानसिक विकारों से बचना चाहिए; क्योंकि ये हमारे रक्तसंचार पर दुष्प्रभाव डालते हैं, जिससे मानसिक व्याधियां या विकलता उत्पन्न होती है।

मानसिक तनाव से बचने के लिए हमें अपनी बाह्य एवं आन्तरिक भावनाओं का नियन्त्रण निम्नानुसार आवश्यक बिन्दुओं पर करना चाहिए—

हमेशा प्रसन्नचित्त रहें—

- जिस क्षण आपको लगे कि आपके हृदय में भय, क्रोध, तनाव आदि के विचार आ रहे हैं तत्काल अपने मन को अच्छे विचारों की ओर ले जायें ताकि तनावपूर्ण भावों के स्थान पर शान्ति एवं प्रसन्नता के भाव उत्पन्न हो सकें।
- अपना मुख्य विचार सदा याद रखें, 'मैं अपने विचार-व्यवहार में सदैव शान्त एवं प्रसन्न रहूंगा।' ऐसा दृढ़ निश्चय व्रत पालन करना चाहिए।
- यदि आप निश्चिन्त हैं तो खूब हंसें। बुरे अर्थात विषम हालात में भी स्वयं को अधिक प्रसन्न रखें। विपत्ति में भी किसी का न बुरा करें, न सोचें।
- क्रोध न करें। दुःख को बार-बार मन में न दोहरायें। पराजय को विजय में बदलने की कोशिश करें। मन को शान्त रखें। धैर्य न छोड़ें। जिन हालात को आप बदल नहीं सकते उन्हें स्वीकार कर निश्चय एवं सूझ-बूझ से सुधारने का प्रयास करें। जो आपत्ति आ पड़ी है, उसे शान्तिपूर्वक सहन करें।

मूलभूत मौलिक आवश्यकताएं—

प्रत्येक मनुष्य की छः मौलिक आवश्यकताएं हैं। प्रेम, सुरक्षा, सृजनात्मक स्वतन्त्रता, सम्मान एवं प्रशंसा, नवीन प्रयोग एवं स्वाभिमान। इन छः में से यदि एक भी आवश्यकता पूरी न हो तो मनुष्य अन्दर-अन्दर उनकी पूर्ति के लिए व्याकुल रहता है। सुखद जीवन के लिए इन छः आवश्यकताओं का पूरा होना जरूरी है। आप अपनी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं इस प्रकार पूरी कर सकते हैं—

- अपनी संरक्षा का उचित प्रबन्ध करें। शेष नियति के हाथों छोड़ दें। लोगों को प्यार करें।
- नवीन प्रयोगों के लिए अपने मनोरंजन करने का उचित प्रबन्ध करें।

- दूसरों के स्वाभिमान को आहत न करने का प्रयास करें। दूसरों की उदार हृदय से प्रशंसा करें, उचित सम्मान दें। उनसे वैसा ही बर्ताव करें, जैसा आप अपने लिए चाहते हैं।

कैसी हो हमारी दिनचर्या—

- सादगी-जैसा कोई आभूषण नहीं। जीवन सादा रखें। मनोरंजन का साधन, कोई हॉबी अवश्य चाहिए।
- अपने काम से प्यार करें। उसे पूर्ण रुचि एवं लगन से करें। बीमारी की चिन्ता बीमारी को और अधिक बढ़ाती है।
- छोटी-छोटी बातों पर चिड़चिड़ायें नहीं। घृणा न करें। नफरत की आग नफरत करने वाले को ही जलाती है। जीवन में सन्तुष्ट रहकर बेहतरी का प्रयास करना सीखें।
- सदा मधुर बोलें। लोगों को खुश रखने एवं लोकप्रिय होने का यह सबसे सरल उपाय है। जल्दबाजी न करें। हड़बड़ाहट में किये गये काम में कुछ-न-कुछ गलतियां रह जाती हैं।
- प्रातः हंसते हुए उठें। ईश्वर को धन्यवाद दें। इससे सारा दिन प्रसन्नतापूर्वक बीत जाता है।
- परिवार के साथ हंसें-बोलें, स्वस्थ संवाद रखें। मनुष्य के लिए प्रसन्नचित्तता आरोग्य का मूल है।
- वर्तमान क्षण का आनन्द लें। ऐसा करने से भविष्य भी सुखमय बनेगा। आस-पड़ोस के लोगों में दिलचस्पी लें, उनकी उचित सहायता करें।

कैसा हो खुशहाल परिवार—

एक खुशहाल परिवार के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

- प्यार के बिना परिवार व्यर्थ है। परिवार के सभी सदस्यों में समान प्यार एवं सौहार्द होना चाहिए।
- एक-दूसरे की सहायता करें। प्रसन्न परिवार के लिए संगठन की भावना होना आवश्यक है।
- रहन-सहन सादा रखें। खुशी एक ऐसी भावना है, जो मन के भीतर रहती है, उसे बाहरी सुख-सुविधाएं ज्यादा प्रभावित नहीं करतीं।
- सुन्दर इमारत एवं फर्नीचर एक अच्छा घर नहीं बनाते। एक अच्छा घर उसमें रहने वाला, सन्तुष्ट एवं प्रेमपूर्ण परिवार बनाता है।
- पराजय को विजय में बदलें। समयानुसार स्वयं को भी बदल लें। यही समझदारी है।

बच्चों से हमारा व्यवहार—

- बच्चों को रोक-टोक की अपेक्षा बेहतर जीवन के आदर्श देने की आवश्यकता है।
- बच्चे बहुत कुछ अनुकरण करने वाले होते हैं, जिससे कि वे अपने माता-पिता के अनुसार ही अपना जीवन बना लेते हैं।
- बच्चों को घर एवं बाहर के लोगों का आदर करना सिखायें। बच्चों पर कठोरता का उचित कारण होना चाहिए।
- बच्चों की मौलिक मनोवैज्ञानिक जरूरतों को पूरी करना चाहिए। बच्चों को मारना नहीं चाहिए। शारीरिक दण्ड बच्चों के लिए हानिकारक होता है।
- उन्हें अत्यधिक सुरक्षा के माहौल में नहीं रखना चाहिए।
- बच्चों को बाह्यमुखी बनायें। जीवन में ऐसे बच्चों के सफल होने की सम्भावनाएं अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। बच्चों पर दबाव पक्का एवं प्रेमपूर्ण होना चाहिए।

वृद्धावस्था में सुखद अनुभूति—

यदि समय, परिस्थिति एवं वातावरण से तालमेल न बनाकर चले तो वृद्धावस्था जीवन का सुनहरा समय होने की अपेक्षा दुःखों की खान बन जाता है। इसके सामान्य कारण हैं—

- स्वास्थ्य खराब हो जाने का भय। बच्चों की ओर से लापरवाही। आर्थिक अवस्था कमजोर हो जाने का भय। बेरोजगारी का भय।
- परिवार की सत्ता से वंचित हो जाना। मित्रों का चल बसना। मृत्यु का भय। आत्मसम्मान का आहत होना।
- अपनी सत्ता एवं स्वामित्व को धीरे-धीरे छोड़ें।

- वृद्धावस्था के लिए कुछ धन संचित करें। मन को शान्त रखें। परिवार से अच्छे सम्बन्ध रखें।
- यदि आप चाहते हैं कि बुढ़ापे में बच्चे आपकी सेवा करें तो आप भी अपने बूढ़े माता-पिता की सेवा करें।
- अपने बच्चों के निजी मामलात में दखल न करें। वृद्धावस्था को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें।
- बच्चों की ओर से अत्यधिक देख-रेख एवं परवाह की आशा न रखें।
- पुराना मित्र चल बसे तो नये मित्र बनायें। मृत्यु से कभी न डरें। मनोरंजन के लिए कोई शौक रखें।
- सदैव याद रखें कि वृद्धावस्था शरीर की नहीं, मन की अवस्था अधिक है। अधिक आयु में भी व्यक्ति युवा रह सकता है। बशर्ते उसका हृदय युवा हो। अतः सदा उत्साहपूर्ण एवं आशावादी विचारधारा रखें।

अपने आस-पास सुखद वातावरण निर्मित करें—

- मन शान्ति महसूस करे, इसके लिए कुहनियों और घुटनों के पीछे के भाग पर बर्फ का एक टुकड़ा रखें, गर्दन के पिछले भाग में ठण्डा भीगा तौलिया रखें।
- तनाव के दौरान किसी भी पालतू जानवर यथा गाय से प्यार करें, उसे सहलायें; इससे तनाव कम होता है तथा मानसिक शान्ति मिलती है।
- घर में अनावश्यक एवं टूटे-फूटे सामान न रखें, उन्हें बाहर कर दें, शेष बचे सामान को साफ करके व्यवस्थित रखें, इससे आपका मन काफी हलका महसूस होगा।
- हमेशा अपने को किसी-न-किसी कार्य में व्यस्त रखें, क्योंकि कहा भी गया है कि ***'खाली दिमाग शैतान का घर होता है।'***
- प्रातःकाल तेज गति से चलने या तैराकी करने से भी तनाव कम होता है, खुशी महसूस करें, पानी से खेलें और मस्त रहें।
- अपने गुजरे हुए अतीत के लमहों को यादकर वर्तमान में खुश होने की कोशिश फोटो, एलबम आदि के माध्यम से करें। वर्तमान से उसकी तुलना न करें।
- सुबह एवं शाम अपने धर्म के अनुसार इष्टदेव की पूजा, अर्चना या मन की एकाग्रता हेतु साधन अपनायें।
- अपने नजदीकी दोस्तों, रिश्तेदारों, सगे-सम्बन्धियों से निरन्तर बात करने का सिलसिला जारी रखा करें; क्योंकि अपने मन की बातों को शेयर करने से मानसिक चिन्ता कम होती है।
- मन और शरीर पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए प्राणायाम करना परम लाभकारी प्रमाणित हुआ है।
- हमेशा अपने भोजन में विटामिन बी-1, बी-2, बी-6, बी-12, ई, सी, फॉलिक एसिड ग्लूकोज एवं आवश्यक खनिज तत्त्व आयरन, जिंक, कैल्शियम, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, फ्लोराइड, सेलेनियम, कॉपर, आयोडीनयुक्त आहार-विहार ग्रहणकर मानसिक स्वस्थता का लाभ प्राप्त करना चाहिए।
- हमेशा दिल खोलकर हंसना चाहिए; क्योंकि जिस प्रकार नाली की सफाई पानी से होती है उसी प्रकार से हंसने से मन का अवसाद, तनाव, उदासी दूर होती है।
- हंसना जीवन का सौरभ है। हंसता, मुसकराता चेहरा निरोग व्यक्तित्व का प्रतीक है। चेहरे पर आयी मुसकराहट मन की मलिनता, दुःख और अवसादों को मन में अधिक देर तक नहीं ठहरने देती।
- भावनात्मक दोषों, ईर्ष्या, क्रोध, मानसिक तनाव, उत्तेजना, निराशा, उदासी, प्रतिशोध आदि भावनाओं का शोधन हंसने से हो सकता है। वास्तविक रूप से हंसना इन विषयों में एक चमत्कारी उपाय भी है।
- योगशास्त्रियों का अभिमत है कि हंसने से खून साफ होता है, उम्र बढ़ती है, चेहरे पर कान्ति आती है तथा बुद्धि का विकास होता है।
- चोरी-छिपे न हंसें। घनिष्ठ सम्बन्धों में हंसना मर्यादित रूप में रहे, जिससे आप भी हंसी के पात्र न बन जायें। अतः हमें अपनी मानसिक स्थिति को काबू में रखना चाहिए, जिससे हम शारीरिक या मानसिक रोगों से बच सकें।

(साभार : गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' सितम्बर 2016)

मोर बहुरिया को धनिया नाऊ

कबीर साहेब का व्यक्तित्व इतना विशाल और बहुआयामी है कि हर व्यक्ति उसमें अपनी मनचाही तस्वीर देख सकता है। आज उनका शारीरिक व्यक्तित्व हमारे सामने नहीं है। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि किसी का शारीरिक व्यक्तित्व स्थायी नहीं रह सकता। चाहे किसी का नाम भगवान-भगवती, अवतार, देवी-देवता क्यों न रख लिया जाये और चाहे किसी के जीवन में दैवीय-ईश्वरीय आरोपण क्यों न कर लिया जाये सबका शरीर मरणधर्मा है। एक दिन सबके शरीर को मिट्टी में मिल जाना है। रह जाता है तो केवल कृतित्व। कबीर साहेब का भी कृतित्व आज हमारे सामने है और उस पर पूरी दुनिया में चिंतन-मनन, अध्ययन-अध्यापन, सर्च-रिसर्च हो रहा है। कबीर-वाणी की प्रासंगिकता और उपादेयता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। दिन जितने बीतते जा रहे हैं कबीर और निखरते जा रहे हैं और उनकी चमक उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है।

कौन कहां जन्मा, उसके माता-पिता कौन थे, जाति-बिरादरी क्या थी, परिवार में कितने सदस्य थे, वह कहां-कहां गया, इन बातों का कोई खास मूल्य नहीं है और न इसका मूल्य है कि वह कितने वर्ष जीवित रहा, किन्तु मूल्य है उसके जीवन-आचरण और कर्म का। मूल्य और महत्त्व है जीकर उसने क्या किया और समाज को क्या दिया इसका।

भारतीय ऋषियों-मुनियों, संतों-महापुरुषों ने अपने बारे में प्रायः न कुछ कहा है और न लिखा है। वे आत्मकथ्य एवं जीवनी लिखने के विषय में प्रायः उदासीन-तटस्थ रहे हैं। उनकी वाणियों के आधार पर हम उनके व्यक्तित्व का मात्र अटकल-अनुमान लगा सकते हैं। अपने आचार-व्यवहार से मानव-समाज को नयी दिशा प्रदान करने वाले संत-महापुरुषों की प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध होती तो मानव-समाज का बड़ा कल्याण होता, किन्तु हमारा यह दुर्भाग्य रहा है कि कुछ को छोड़कर अधिकतम महापुरुषों की प्रामाणिक जीवनी हमें उपलब्ध नहीं है। जनश्रुतियों के माध्यम से या साहित्यिक साक्ष्य से जो कुछ ज्ञात होता है वह चमत्कारिक प्रसंगों से ओतप्रोत और मिथ्या महिमाओं से मंडित है। ऐसी जीवनियों से भावुक श्रद्धालुओं की श्रद्धापूर्ति भले हो जाये, बौद्धिक संतोष किसी को नहीं होता। मानव-मन की यह बहुत बड़ी कमजोरी है कि वह महापुरुषों को सामान्य मनुष्य नहीं रहने देता। उनके इर्द-गिर्द दैवी चमत्कारों का स्वर्णिम वर्क लगाकर उन्हें आम जनता और धरती से काटकर आकाशीय बना देता है।

तो दूसरी तरफ अनेक विद्वान संतों की वाणियों में से ऐसी वाणियां जिनमें जन सामान्य की मनोदशा का चित्रण है या जो वाणियां रूपक और अन्योक्ति में कही गयी हैं उनका शाब्दिक अर्थ लगाकर महापुरुषों के जीवन का ऐसा चित्रण करते हैं जो और अधिक काल्पनिक तथा विवादास्पद हो जाता है। यह जानते हुए भी कि अन्य संतों की भांति कबीर साहेब ने अपनी वाणियों में अपने बारे में कुछ कहा नहीं है और न लोई या किसी अन्य स्त्री को अपनी पत्नी बताया है, कबीर-वाणी के कुछ ऐसे पद जिनमें सर्वसामान्य लोगों का चित्रण है, सर्वसामान्य कथन है या जिनमें आध्यात्मिक अर्थ वाले रूपक हैं, उनके आधार पर अनेक विद्वानों ने कबीर को गृहस्थ और विवाहित तो बताया ही है उनके वैवाहिक-पारिवारिक जीवन को कलहपूर्ण और दुखपूर्ण भी चित्रित किया है। इन विद्वानों में डॉ. रामकुमार वर्मा अग्रगण्य हैं। यद्यपि डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने ढंग से कबीर साहेब पर बहुत अच्छा काम किया है और वह प्रशंसनीय है, परंतु कबीर साहेब की जीवनी और उनके पारिवारिक जीवन का चित्रण करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने कबीर का जो चरित्र-हनन किया है वैसा आज तक किसी ने नहीं किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने कबीर के जीवन का जो चित्रण किया है उसके अनुसार

कबीर संत तो हैं ही नहीं, सामान्य संसारी आदमी से भी गये-गुजरे हैं। ऐसे आदमी को संत कहना संतों का अपमान करना है, फिर भी डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर को संत कहते और मानते हैं तथा 'संत कबीर' नाम से पुस्तक भी लिखते हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा सहित अधिकतम विद्वान लोई को कबीर की पत्नी बताते हैं। इसका कारण है कबीर-वाणी में अनेक स्थलों पर 'लोई' शब्द का प्रयोग। प्रश्न होता है कि यदि कोई लेखक-कवि किसी शब्द का प्रयोग अपने लेख या कविता में करता है तो उस शब्द का अर्थ पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, माता-पिता या अन्य संबंधियों के रूप में कर उस लेखक या कवि के साथ उसका पारिवारिक संबंध जोड़ना क्या न्यायसंगत है जबकि उस लेखक ने कहीं भी अपना वैसा संबंध नहीं बताया है। फिर कबीर-वाणी में प्रयुक्त 'लोई' शब्द का अर्थ लोई नाम की स्त्री बताकर उसे कबीर की पत्नी बताने का अपराध ये विद्वान लेखक क्यों कर रहे हैं।

आइये देखते हैं कबीर-वाणी में लोई शब्द कैसे और किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

माया मोह बंधा सब लोई। अल्प लाभ मूल गौ खोई ।।
(बीजक, रमैनी 84)

तुम यहि विधि समझो लोई, गोरी मुख मंदिर बाजे ।।
(बीजक, शब्द 82)

कहहिं कबीर सुनो नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवा होई ।।
(बीजक, शब्द 105)

ज्ञानी चतुर बिचक्षण लोई। एक सयान सयान न होई ।।
(रमैनी 36)

अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भया सब लोय ।।
(रमैनी सा. 10)

पाटन सुबस सभा बिनु अवसर, बूझो मुनि जन लोई ।।
(शब्द 16)

बीजक से उद्धृत इन पंक्तियों से तो यह आभास तक नहीं होता कि इनमें आया 'लोई' शब्द स्त्रीवाचक है। सर्वत्र स्पष्ट यही जान पड़ता है कि यहां लोई लोगों के अर्थ में ही प्रयुक्त है। जरा ध्यान दें, रमैनी 36 में कहा गया है ज्ञानी चतुर विचक्षण लोई। यदि लोई स्त्री है तो क्या वह ज्ञानी, चतुर और विचक्षण अर्थात विद्वान, दूरदर्शी, दक्ष, पारंगत, प्रकाशमान भी है। क्या कबीर की पत्नी लोई में इतनी विशेषता थी? क्या कबीर अपनी पत्नी की प्रशंसा में इतने अधिक विशेषण लगाते हैं, जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार कबीर अपनी पत्नी लोई के लिए कहते हैं 'पहली कुरूप कुजात कुलखनी' है। दोनों में सच क्या है? यहां लोई के लिए ज्ञानी, चतुर, विचक्षण कहा गया है, इतने विशेषण तो कबीर अपने गुरु के लिए भी नहीं लगाये होंगे। जबकि वे सर्वत्र गुरु की महिमा का वर्णन करते हैं। बीजक शब्द 105 में कहा गया है—कहहिं कबीर सुनो नर लोई। यहां तो लोई को नर कहा गया है। फिर वह कबीर की पत्नी कैसे? शब्द 16 में कहा गया है—बूझो मुनिजन लोई। यहां लोई को मुनि ही नहीं मुनिजन कहा गया है । मुनि या मुनिजन स्त्री है या पुरुष।

बीजक में आया लोई शब्द लोग, सब लोग, नर लोगों, ज्ञानी, चतुर विचक्षण लोगों, मुनि जन का वाचक है न कि स्त्रीवाचक, फिर भी लोई को कबीर की पत्नी बताना विद्वता का ही कमाल है। यह कमाल विद्वान ही कर सकते हैं, सामान्य जन नहीं। इन्हीं विद्वानों की विद्वता के कमाल से कबीर के कमाल नाम का पुत्र भी पैदा हो गया, यह पाठक ध्यान रखेंगे। अब आइये विद्वानों द्वारा संपादित कबीर ग्रंथावली में देखते हैं कि उसमें लोई शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बंधी लोइ ।।
(चितावणी को अंग 53)

कबीर माया मोह की, भई अंधारी लोइ ।।
(माया को अंग, 24)

गुण औगुण बिहड़ै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ ।।
(अविहड़ को अंग 2)

कहत कबीर सुनहु रे लोई, हरि बिन राखनहार न कोई ।।
(पद 95)

कहैं कबीर सुनहु रे लोई, भांनड़ घड़ण संवारण लोई ।।

(पद 273)

अंजन उतपति बरतन लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई ।।

(पद 337)

का नट भेष भंगवा बस्तर, भसम लगावै लोई ।।

(पद 346)

कहहिं कबीर सुनहु रे लोई, राम नाम बिनु और न कोई ।।

(पद 367)

माया मोह धन जोबन, इन बंधे सब लोई ।।
बे अकली अकल न जानही, भूलै फिरैं ए लोई ।।
रँग न चीन्हें मूरख लोई, जिहि रंगि रंग रह्या सब लोई ।।
सरग के पथि जात सब लोई,

उक्त उद्धरणों में 346वें पद में कहा गया है 'का नट भेष भंगवा बस्तर भसम लगावै लोई'। यदि लोई कबीर की पत्नी है तो डॉ. रामकुमार वर्मा से और उनकी लकीर पकड़कर चलने वाले विद्वानों से पूछना है कि क्या कबीर यहां अपनी पत्नी लोई से कह रहे हैं कि ऐ लोई! तुम्हारे भगवा वस्त्र पहनकर और शरीर में भस्म लगाकर नट की तरह वेष बनाने से क्या होगा। या कबीर उन लोगों से कह रहे हैं जो ऐसा करते हैं? क्या लोई सचमुच में घर का काम-धाम छोड़कर भगवा वस्त्र पहनकर और शरीर में भस्म लगाकर घूमती थी, जिसके कारण यहां कबीर लोई को उलाहना दे रहे हैं। फिर एक जगह आया है—सरग के पथि जात सब लोई। कबीर की पत्नी लोई के अतिरिक्त क्या लोई नाम की और भी अनेक स्त्रियां थीं और वे सब स्वर्ग के रास्ते में जा रहीं थीं?

उक्त सारे उद्धरणों को देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि सभी जगह कबीर लोई शब्द का प्रयोग लोग या लोगों के अर्थ में ही करते हैं। कहीं भी उन्होंने लोई को अपनी पत्नी नहीं बताया है, परंतु इस ज्वलंत तथ्य से आंखें मूंदकर डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं—कबीर ने अपनी पत्नी का नाम 'लोई' कहा है। एक बार उससे उनकी कहा-सुनी हो गयी। इस झगड़े को उन्होंने अपने पद में विस्तार से कहा है।[1] उक्त सारे उद्धरणों में तो कहीं भी पता नहीं चलता कि कबीर ने लोई को अपनी पत्नी कहा हो। यदि पाठकों को दिखाई पड़े तो वे अवश्य बतायें।

जिस पद के आधार पर डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि कबीर ने अपनी पत्नी का नाम लोई बताया है, आइये उस पूरे पद को देखते हैं। यह पद डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा संपादित 'संत कबीर' से उद्धृत किया जा रहा है और उसका अर्थ भी डॉ. वर्मा का ही दिया जा रहा है—

तूटे तागे निखुटी पानि, दुआर ऊपरि झिलकावहि कान।
कूच बिचारे फूए फाल, इआ मुंडीआ सिर चढिबो काल।
इहु मुंडीआ सगलो द्रबु खोई, आवत जात नाक सर होई ।। 1 ।।
तुरी नारि की छोड़ी बाता, राम नाम वा का मनु राता।
लरकी लरिकन खैबो नाहि, मुंडीआ अनदिन धाये जाहि।
इक दुइ मंदिर इक दुइ बाट, हम कउ साथरु उन्ह कउ खाट ।।
मूंड पलोसि कमर बधि पोथी, हम कउ चाबनु उन कउ रोटी।
मुंडीआ मुंडीआ हूए एक, इह मुंडीआ बूडत की टेक।
सुनि अंधली लोई बे पीर, इन्हि मुंडीअन भजि सरनि कबीर ।।

(कबीर की भक्ति पर व्यंग्य करते हुए उनकी स्त्री लोई कहती है) पानी के कम हो जाने से करघे का तागा टूट-टूट जाता है और वह दूसरी ओर बाहर होकर मानों अपने कान हिलाता हुआ निकल पड़ता है। बेचारा कूच फूल गया है और उस पर फफूंदी चढ़ गई है और मुंडीआ (हत्था जो राछ के ऊपर रहता है) के सिर काल चढ़ने वाला है अर्थात शीघ्र ही नष्ट होने वाला है। इसी मुंडीआ (हत्था) के खरीदने में सारा पैसा लग गया था। और इसके आने-जाने के प्रयोग में कभी कसर नहीं होती थी (अर्थात सदैव करघा चलता रहता था।) किन्तु अब तुरी (तोड़िया) और नरी की बात ही छोड़ दी गई है क्योंकि उनका (कबीर का) मन राम-नाम ही में रंग गया है। लड़की और लड़कों के खाने के लिए कुछ भी नहीं है। हां, ये मुंडिया (साधु संन्यासी) प्रतिदिन संतुष्ट किये जाते हैं। एक दो (मुंडिया) घर में हैं, एक दो रास्ते

1. कबीर एक अनुशीलन, पृ. 35 संस्करण 1983।

में हैं (जो घर की ओर आ रहे हैं।) हम लोग तो जमीन पर बिस्तर डालकर सोते हैं और इन लोगों के लिए खाट का प्रबंध किया जाता है। ये लोग सिर धोकर कमर में पोथी बांध लेते हैं, बस इसी बात पर ये तो मेरे घर में रोटी खाते हैं और हमें चबैना ही मिलता है। ये मुंडिया (संन्यासी) और मुंडिया (संन्यासी-हमारे पति) एक हो गये हैं। इन संन्यासियों ने हमें डुबाने ही की ठानी है। (यह सुनकर कबीर ने कहा) ऐ अंधी और निर्दयी लोई, इन्हीं मुंडियों के भजन करने से तो कबीर को (भगवान) की शरण मिली है।

इस पद में कबीर ने कहां कहा है कि मेरी पत्नी का नाम लोई है, जिसके आधार पर डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि कबीर ने अपनी पत्नी का नाम लोई कहा है। न तो इसमें किसी कहा-सुनी का चित्रण है और न झगड़े का। डॉ. वर्मा ने जो अर्थ किया है उसके अनुसार तो एक तरफ से लोई अपना दुखड़ा किसी के सामने सुना रही है, न कि किसी से झगड़ रही है। पूरा पद और उसका अर्थ पढ़ जाने से यही निष्कर्ष निकलता है कि यह पद कबीर का कहा न होकर लोई का कहा हुआ है। इसमें तो कहीं लगता ही नहीं है कि कबीर अपनी बात कह रहे हैं। अंतिम पंक्ति है—सुनि अंधली लोई बेपीर–तो क्या लोई अंधी थी? इसके आधार पर डॉ. वर्मा को लिखना था कि कबीर की पत्नी लोई अंधी थी या अंधी हो गई थी। इस पद के अनुसार लोई कहती है कि मुंडिया (संन्यासी) और मुंडिया (संन्यासी-कबीर) एक हो गये हैं तो क्या इस समय तक कबीर संन्यासी हो गये थे। साफ बात है डॉ. रामकुमार वर्मा अपनी कल्पना में कबीर का एक चित्र गढ़ते जाते हैं और कबीर-वाणी को तोड़-मरोड़कर उस चित्र में ऐसा रंग भरते जाते हैं जिससे डॉ. वर्मा के पाठकों को यह भ्रम हो जाये कि यही कबीर का वास्तविक चित्र है।

कबीर साहेब के पहले भी काव्य में 'लोई' शब्द का प्रयोग लोगों के अर्थ में होता रहा है, न कि लोई नामक स्त्री के अर्थ में। लोई को कबीर की पत्नी बताना विद्वानों का दुस्साहस मात्र है और पाठकों के मन में भ्रम उत्पन्न करना है।

बाबू श्री श्यामसुंदर दास जी ने 'कबीर ग्रन्थावली' के नाम से कबीर वाणी का संपादन किया है। उसकी भूमिका में आपने भी लोई को कबीर की पत्नी बताया है। आप 'कबीर ग्रंथावली' की भूमिका में लिखते हैं—

"कबीर के साथ प्रायः लोई का नाम लिया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह कबीर की शिष्या थी और आजन्म उनके साथ रही। अन्य इसे उनकी परिणीता स्त्री बताते हैं और कहते हैं कि इसके गर्भ से कबीर को कमाल नाम का पुत्र और कमाली नाम की पुत्री हुई थी। यह अधिक संगत जान पड़ता है कि लोई कबीर की पत्नी थी जो कबीर के विरक्त होकर नवीन पंथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गयी। कहते हैं कि लोई एक बनखण्डी वैरागी की परिपालिका कन्या थी। वह लोई उस वैरागी को स्नान करते समय लोई में लपेटी और टोकरी में रखी हुई गंगा जी में बहती हुई मिली थी। लोई में लपेटी हुई मिलने के कारण उसका नाम लोई पड़ा। बनखंडी वैरागी की मृत्यु के बाद एक दिन कबीर उनकी कुटिया में गये। वहां अन्य संतों के साथ उन्हें भी दूध पीने को दिया गया। कबीर ने अपने हिस्से का रख लिया। पूछने पर बताया कि गंगा पार से एक साधु आ रहे हैं, उन्हीं के लिए रख छोड़ा है। थोड़ी देर में सचमुच एक साधु आ पहुंचा जिससे अन्य साधु कबीर की सिद्धि पर आश्चर्य करने लगे। उसी दिन से लोई उनके साथ हो ली।'

बाबू श्री श्यामसुंदर दास जी का उक्त कथन शब्दों की बाजीगरी के अलावा और कुछ नहीं है। एक ओर तो सभी विद्वान एक स्वर से कहते हैं कि कबीर ने कोई पंथ नहीं चलाया, वे पंथ-स्थापना के विरोधी थे। यहां कहा जा रहा है कि कबीर ने विरक्त होकर नवीन पंथ चलाया। कबीर द्वारा प्रवर्तित वह नवीन पंथ कौन-सा है, बाबू साहब यह भी बता दिये होते तो कबीर के पाठकों के लिए यह उनकी बड़ी कृपा होती। डॉ.

रामकुमार वर्मा कह रहे हैं कि कबीर की पत्नी लोई इस बात के लिए दुखी रहती थी कि कबीर कपड़ा बुनने का काम छोड़कर मुंडिया संन्यासियों के पीछे घूमा करते हैं और घर में जो कुछ है वह मुंडिया साधुओं को खिलाने में खर्च कर रहे हैं, जबकि बाबू श्यामसुंदर दास कह रहे हैं कि कबीर की पत्नी लोई कबीर के विरक्त साधु होकर नवीन पंथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गयी। दोनों में किसका कहना सच माना जाये और किसका झूठ। वस्तुतः डॉ. राम कुमार वर्मा और बाबू श्यामसुंदर दास दोनों का कहना झूठ है। क्योंकि कबीर की लोई नामक कोई पत्नी थी ही नहीं। दास साहब ने यह नहीं बताया कि कबीर के विरक्त हो जाने पर उनकी पत्नी लोई भी विरक्त होकर कबीर की अनुगामिनी बनी थी या अनुगामिनी बनकर घर में रहते हुए बाल-बच्चों का पालन-पोषण करती रही। और कबीर विरक्त होने के बाद घर में ही रहते रहे या स्वतंत्र विचरण करते रहे।

ऊपर जो बाबू श्यामसुंदर दासजी का कथन उद्धृत किया गया है और जिसके लिए कहा गया है कि यह शब्दों की बाजीगरी के अलावा कुछ नहीं है, उक्त उद्धरण के संबंध में श्री कमलापति पाण्डेय की टिप्पणी अत्यंत मार्मिक है, जो इस प्रकार है—

"कहानी देखिये और इसमें आये पेंचोखम देखिये। शब्द 'प्रायः, कुछ लोग कहते हैं', 'अन्य बताते हैं', 'जान पड़ता है, कहते हैं' के बिना कोई वाक्य नहीं है। इनके बीच लोई कभी शिष्या तो कभी परिणीता तो कभी अनुगामिनी हो रही है। ध्यान से देखिये! कबीर विरक्त होने के बाद नवीन पंथ चलाने के बाद लोई को अनुगामिनी बना रहे हैं। वे कबीर जो आवत ही फेरी का उपदेश देते रहे! विद्वानों की यह लटपटाहट उनके छिपाये भी नहीं छिपती। इसे देखना हो तो बस, उनके शब्दों की बाजीगरी देखिये, सब साफ-साफ दिखने लगेगा जैसे मदारी के हाथ की सफाई दिखने लगती है। मैं यह नहीं कहता कि यह सब कबीर के प्रति द्वेष भावना से किया जा रहा है। मेरा कहना मात्र यह है कि विद्वान अपनी विद्वता से न्याय नहीं कर रहा है, बस। लोक भी कहता है, विद्वान भी कहते हैं कि कबीर चमत्कार विरोधी थे। लेकिन जब वे उनकी कहानी गढ़ते हैं तब सारा का सारा चमत्कार उड़ेल कर रख देते हैं। कबीर पैदा हुए तो चमत्कार। पालित हुए तो चमत्कार। शिष्य हुए तो चमत्कार। लोई मिली तो चमत्कार। लोई का जन्म भी चमत्कार। ठीक ही तो है! जब कोई देवता अवतार लेता है तो अपने सहयोगियों को पहले ही अवतार दिला देते हैं।"[1]

सीधी-सच्ची बात यह है कि कबीर ने अपनी वाणियों में अनेक स्थलों पर लोई शब्द का प्रयोग अवश्य किया है, परंतु उन्होंने कहीं भी लोई को अपनी पत्नी या अनुगामिनी नहीं कहा है। लोई कबीर की पत्नी थी यह विद्वानों की अटकलपच्चू उड़ान मात्र है। जिन विद्वानों ने लोई को कबीर की पत्नी कहने-लिखने की दुश्चेष्टा की है उनसे असहमति प्रकट करते हुए और उनके कथन का खंडन करते हुए डॉ. युगेश्वर लिखते हैं—

"डॉ. माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'मधुमालती' में लोई का प्रयोग लोग के अर्थ में आया है—

कलि अवतरिआ अमर न कोई, अंत हाथ पछतावा लोई।

शेष अब्दुल कुद्दुष गंगोही की 'अलख बानी' में लोई शब्द के प्रयोग अनेक बार हुए हैं—

अलख दास आखे सुन लोई।
चरपट कहे सुनो रे लोई।।

गोरख बानी में लोई शब्द—

बंदत गोरखनाथ सुनो नर लोई।

"साफ है कि कबीर कहीं भी लोई को अपनी स्त्री नहीं कहते। लोई को कबीर की स्त्री कहना किसी पंडित की भाषा विज्ञानी भूल थी। किसी प्रभावशाली पंडित के कारण लोई कबीर की पत्नी के रूप में जनश्रुति बन गयी।... कबीर ग्रंथावली और प्राचीन ग्रंथों के आधार पर लोई व्यक्तिवाचक नाम नहीं है। इसलिए इसके

1. महात्मा कबीर सम्यक सत्यार्थ, पृ. 147, संस्करण-2016।

कबीर की पत्नी होने का सवाल नहीं उठता।...कबीर की पत्नी का नाम लोई बिलकुल ही काल्पनिक और भ्रममूलक आधारों पर प्रचलित है।"[1]

डॉ. भोलानाथ तिवारी भी मानते हैं कि कबीर वाणी में लोई का प्रयोग लोग के अर्थ में हुआ है। कबीर-वाणी में आये 'लोई' शब्द का उदाहरण देते हुए वे लिखते हैं—कुछ लोगों का विचार है, इन दूसरे प्रकार के उदाहरणों में लोई का अर्थ लोग (सं. लोक, लोग, लोय, लोई, लोइ) है। मेरा अपना विचार है कि प्रथम प्रकार के प्रयोगों में भी 'लोइ' का अर्थ 'लोग' ही है और कबीर सामान्य लोगों को संबोधित करके कह रहे हैं । गलती से लोगों ने 'लोई' को स्त्री समझ लिया और यह जनश्रुति चल पड़ी कि वे विवाहित थे। कबीर की सारी रचनाओं में कहीं भी 'लोई' या 'लोइ' का प्रयोग ऐसा नहीं है, जहां लोग अर्थ ठीक न बैठे। ऐसी स्थिति में इन छंदों के आधार पर 'लोई' को कबीर की स्त्री नहीं माना जा सकता।"[2]

डॉ. रामकुमार वर्मा आगे लिखते हैं—"एक दूसरे उद्धरण में कबीर की पत्नी का नाम धनिया है। रागु आसा के 33वें पद में कबीर कहते हैं—

मेरी पत्नी का नाम धनिया है। इन मुंडियों ने उसका नाम बदलकर 'राम जनिया' कर दिया है। इन मुंडियों ने मेरे घर में आग लगा दी है—वह धुएं से भर गया है। और उन्होंने मेरे बेटे को (सगुण) राम में रमने के लिए बाध्य किया है।

कबीर कहते हैं कि ओ मेरी माता! सुनो इन मुंडियों ने मेरी जाति ही खो दी है।"[3]

डॉ. वर्मा के उक्त कथन का आधार उनके द्वारा संकलित कबीर का निम्न पद है—

मेरी बहुरिया को धनिआ नाउ। लै राखियो राम जनीआ नाउ ।।
इन्ह मुडीअन मेरा घरु धुँधरावा। बिटवहि राम रमउवा लावा ।।
कहतु कबीर सुनहु मेरी माई। इन मुंडीअन मेरी जाति गंवाई ।।

इस पद में आये 'लै राखियो राम जनीआ नाउ' का सीधा-सरल अर्थ है कि मैंने उसका नाम रामजनिया रख लिया है। इसमें यह कहां कहा गया है कि 'इन मुंडियों ने उसका नाम बदलकर 'राम जनिया' कर दिया है।' मूल पद में तो मुंडिया है ही नहीं। मूल पद में है 'लै राखियो'। इसका अर्थ ले रखा, रख लिया होगा या बदलकर कर दिया होगा। मुंडिया लोग कबीर से किस बात में रुष्ट थे जिसके कारण उन्होंने कबीर के घर में आग दी और आग लगने पर कबीर का घर जलकर राख हो गया या बच गया? "बिटवहि राम रमउवा लावा' का तो अर्थ है—बेटा को राम में रमण करने को लगा दिया या बेटा राम में रमने लगा। इसमें सगुण शब्द कहां है और किसी को बाध्य करने का जिक्र कहां है। सीधी बात है डॉ. रामकुमार वर्मा मनमानी अर्थ करते चले जा रहे हैं।

जो कबीर आजीवन जाति-पांति का विरोध करते रहे वे कबीर अचानक अपनी माता से शिकायत कैसे करने लग गये कि इन मुंडियों ने मेरी जाति ही बिगाड़ दी। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार तो कबीर की माता कबीर को सदैव साधु-संगति करने से रोकती रही और इसलिए दुखी रहती थी कि कबीर ने ताना-बाना का काम छोड़कर अपने शरीर पर राम-नाम लिख लिया है।[4] मुंडिया-साधुओं के पास तो कबीर स्वयं अपनी मर्जी से जाते रहे। तब कबीर अपनी माता से मुंडिया-साधुओं की शिकायत क्यों करेंगे कि इन लोगों ने मेरी जाति बिगाड़ दी। क्या कबीर बड़ी जाति कहलाने वाले किसी ब्राह्मण-क्षत्रिय के घर पैदा हुए थे, जिससे साधु-संगति से उनकी जाति बिगड़ गयी है। डॉ. रामकुमार वर्मा खुद लिखते हैं—"कबीर ने अनेक बार कहा है कि लोग उनकी हीन जाति के प्रति हंसी उड़ाते थे। किन्तु कबीर स्वयं प्रभु के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि हीन जाति में जन्म लेने पर भी वे प्रभु का नाम-स्मरण कर सके।[5] जब कबीर स्वयं को हीन जाति का

1. कबीर समग्र, पृ. 99।
2. कबीर जीवन और दर्शन, पृ. 30, संस्करण 1978।
3. कबीर एक अनुशीलन, पृ. 36, संस्करण 1983।
4. वही, पृ.34।
5. वही, पृ.34।

मानते हैं और ग्रंथावली के अनुसार अनेक बार कहते हैं—मैं काशी का जुलाहा, जुलाहा दास कबीर, जाति जुलाहा मति का धीरू। यहां तक 'हौं तो जात कमीना, तब उनकी जाति क्या बिगड़ गयी जिसकी शिकायत वे अपनी माता से कर रहे हैं।

जिसके पास कुछ हो उसी को तो उसके खोने का डर होगा। जिसके पास कुछ है ही नहीं उसे क्या डर होगा कि कहीं मेरा कुछ खो न जाये। जो कबीर अपने को बार-बार जुलाहा कहते हैं और जिनके मन में जुलाहा होने के कारण रंच मात्र हीन भावना नहीं है, किन्तु ब्राह्मणों को चुनौती देते हैं कि 'तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, बुझहु मोर गियाना' साथ ही ब्राह्मणों को इसलिए फटकारते हैं कि उन्होंने जाति-पांति के नाम पर समाज को बांट दिया है, उस कबीर को अपनी जाति बिगड़ने का दुख कब से होने लगा।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' शीर्षक से कबीर-वाणी का संकलन किया है और उसे अधिक से अधिक प्रामाणिक माना है, परंतु यह कितना प्रामाणिक है इसे हिन्दी साहित्य के विद्वान अच्छी तरह जानते हैं। संत कबीर की प्रस्तावना पृष्ठ 65 में डॉ. वर्मा लिखते हैं—

"कबीर की संभवतः दो स्त्रियां थीं। पहली कुरूप थी, उसकी जाति का कोई पता नहीं था और उसमें गार्हस्थ्य के कोई लक्षण नहीं थे। दूसरी सुंदरी थी, अच्छी जाति की थी तथा अच्छे लक्षणों से संपन्न थी। पहली स्त्री का नाम था 'लोई' और दूसरी स्त्री का नाम था 'धनियां' जिसे लोग 'रमजनिया' भी कहते थे। संभवतः यह वेश्या रही हो किंतु कबीर की दृष्टि में वेश्या किसी भांति हीन न समझी गई हो।"

यहां डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों की बाजीगरी और घालमेल देखने लायक है। वे संभवतः से अपनी बात शुरू करते हैं और संभवतः से समाप्त, परंतु यह संभवतः डॉ. वर्मा का इतना अटल तथ्य है कि वे इससे तिल भर इधर-उधर टलने को, पुनर्विचार करने को तैयार नहीं हैं। डॉ. वर्मा किस प्रकार घालमेल करके अपना उक्त निष्कर्ष निकालते हैं यह समझने के लिए बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' के दो पद उद्धृत किये जा रहे हैं जो परिशिष्ट में हैं तथा जो गुरुग्रंथ साहब में तो हैं ही डॉ. वर्मा ने भी इन्हें अपने द्वारा संपादित 'संत कबीर' में भी रखा है जो रागु आसा के अंतर्गत पद संख्या 32 एवं 33 में है—

पहिली करुपि कुजाति कुलखनी साहुरे पेईअै बुरी।
अब की सरूपि सुजाति कुलखनी सहजे उदरि धरी।
भली सरी मुई मेरी पहली बरी।
जुगु जुगु जीवउ मेरी अबकी धरी।।
कहु कबीर जब लहुरी आई बड़ी का सुहाग टरिओ।
लहुरी संग भई अब मेरे जेठी अउरू धरिओ।। 136 ।।

मेरी बहुरीआ को धनिआ नाउ। ले राखिओ राम जनीआ नाउ।
इन्ह मुंडीयन मेरा घरु धुंधरावा। बिटवहि राम रमऊवा लावा।
कहतु कबीर सुनहु मेरी माई।
इन मुंडीअन मेरी जाति गंवाई।। 167 ।।

उक्त दोनों पद को देखें। डॉ. वर्मा पद संख्या 167 जो उनके द्वारा संपादित 'संत कबीर' के रागु आसा का पद 33 है उसकी पहली पंक्ति लेते हैं और पद संख्या 136 जो 'संत कबीर' के रागु आसा का पद 32 है उसकी पहली-दूसरी पंक्ति की आधी-आधी पंक्ति लेते हैं, शेष गायब कर देते हैं। डॉ. वर्मा धनिया को रमजनिया कहते हैं और लिखते हैं कि संभवतः यह वेश्या रही हो। फिर उसे सुंदरी, अच्छी जाति की और अच्छे लक्षणों से संपन्न भी। वेश्या सुंदरी तो हो सकती है, होती ही है, परंतु क्या वेश्या की भी अच्छी-बुरी जाति होती है और क्या वह अच्छे-बुरे लक्षणों वाली होती है। परंतु विद्वता कहते किसे हैं! विद्वता का कमाल यही है कि चाहे जिसको जैसा सिद्ध कर दिया जाये। आम पाठक या जनता के पास ऐसी विद्वता या शक्ति कहां जो किसी डॉक्टर उपाधिकारी के कथन को गलत साबित कर सके।

डॉ. वर्मा के संत कबीर के उक्त उद्धरण पर समालोचना करते हुए श्री कमलापति पाण्डेय लिखते हैं—

"वर्मा जी किसे बेवकूफ समझ रहे हैं? पाठक को? पाठक बेवकूफ नहीं होता, हां उसके पास कलम नहीं होती बस। वह सब समझ लेता है, जब समझने पर आता है। और यदि समझकर कलम उठा लेता है तब क्या होता है? बेवकूफ समझने वाले की पोल खुलते ही ऐसा चतुर बेवकूफ सिद्ध हो जाता है और यह सिद्धि इतिहास में अकाट्य होकर दर्ज हो जाती है।

वर्मा जी 'संभवतः' से प्रारंभ करते हैं और संभवतः से समाप्त। उनकी लोई कुरूपा है, उसकी जाति का पता नहीं है, उसमें गार्हस्थ्य के लक्षण नहीं हैं। दूसरी है धनिया, जिसमें यह सब है। अब देखिये वर्मा जी कैसा पलटा खिलाते हैं। 'संभवतः यह वेश्या रही हो'। वाह वर्मा जी वाह। आप इसी धनिया को 'अच्छी जाति' की कहते हैं और 'वेश्या' भी। इसी को 'अच्छे लक्षणों' से संपन्न भी बताते हैं और वेश्या भी। धन्य है आपका जाति-विचार और गार्हस्थ्य लक्षण विचार। रखने वाले के हीन न समझने से यदि वेश्या सुजाति हो जाये या सुलक्षिणी हो जाये, तो हमें कुछ नहीं कहना, लेकिन गौर तलब बात यह है कि केवल तीन वाक्यों के अपने कथन में जो अपने तर्क सम्हाल नहीं सका, वह कबीर के आधे पद की भी व्याख्या करने के उपयुक्त अपने को मानता कैसे है? कबीर को लोगों ने समाज सुधारक बहुत बनाया है, वर्मा जी को समर्थन मिल गया होता तो वे कबीर को वेश्योद्धारक भी बना देते, बिना यह देखे कि कबीर बहुदेव पूजकों को 'वेश्या' कहते हैं और कभी 'वेश्या का पूत भी।"[1]

"मोर बहुरीआ को धनिआ नाउ। ले राखिओ राम जनिया नाउ।।" इस पंक्ति के आधार पर डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि 'कबीर की दूसरी पत्नी का नाम धनिया था, जिसे लोग रमजनियां भी कहते थे। संभवतः यह वेश्या रही हो।' इस पंक्ति का अर्थ करते हुए डॉ. वर्मा स्वयं लिखते हैं कि 'मेरी पत्नी का नाम 'धनिया' है। इन मुंडियों ने उसका नाम बदलकर 'राम जनिया' कर दिया है। पहली बात तो यह कि इसमें यह कहां गया है कि धनिया मेरी दूसरी पत्नी है। इसमें न तो पहली का जिक्र है और न दूसरी का। जिक्र है तो बस इतना कि मेरी बहुरिया का नाम धनिया है। धनिया कबीर की दूसरी पत्नी थी यह डॉ. वर्मा की अपनी कल्पना है, जो उन्होंने घालमेल करके लिखा है। दूसरी बात डॉ. वर्मा स्वयं लिखते हैं—" 'राम जनिया' का सामान्य अर्थ वेश्या है। ऐसा अनुमान होता है कि कबीर के समय में इस शब्द का अर्थ पवित्र था और उसका अर्थ है वह स्त्री जो राम का भक्त है।"[2] "ज्ञात होता है, कबीर के समय में 'रामजनिया' वर्तमान अर्थ 'वेश्या' के अर्थ में प्रचलित न था।"[3] वर्मा महोदय जब आप स्वयं लिख रहे हैं कि कबीर के समय में इस शब्द का अर्थ पवित्र था और वर्तमान अर्थ 'वेश्या' के अर्थ में प्रचलित न था, तब किस आधार पर आप लिख रहे हैं कि रामजनिया वेश्या थी। आपका स्वयं का निश्चय क्या था। क्या यह विद्वता की आड़ लेकर पाठकों की आंखों में धूल झोंकना, भ्रम फैलाना और गलत बात का प्रचार करना नहीं है।

डॉ. रामकुमार वर्मा को जब कबीर के एक विवाह से संतोष नहीं हुआ तब वे कबीर के दो विवाह का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि कबीर की पहली पत्नी कुरूपा तथा कुलक्षणा तो थी ही, निम्न जाति कुजाति की भी थी। और उसके कारण कबीर का पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था, इसलिए कबीर ने सुरूपा, सुलक्षणा एवं ऊंची जाति-सुजाति स्त्री से विवाह किया। डॉ. वर्मा के शब्दों में ही देखें—

एक अन्य पद में कबीर अपने दो विवाहों का उल्लेख करते हैं। संभव है पहली पत्नी से पारिवारिक जीवन सुखी न होने के कारण कबीर ने दूसरा विवाह किया हो। कालान्तर में दूसरी पत्नी ने किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह कर लिया हो किन्तु वह अधिक दिनों तक जीवित न रही हो। उसकी मृत्यु पर कबीर को संतोष भी हुआ हो। कबीर ने रागु आसा में कहा है—

मेरी पहली पत्नी कुरूप, कुजाति और कुलक्षिणी थी। यहां तक कि मेरे पिता (साहुजी) भी उसे बुरी

1. महात्मा कबीर सम्यक सत्यार्थ, पृ.152-153।
2. कबीर एक अनुशीलन, पृ. 36।
3. संत कबीर, पृ. 222, संस्करण पांचवां, 1966।

समझते थे। किन्तु दूसरी पत्नी सुंदर, ज्ञानवती, और सुलक्षणा थी। और वह शीघ्र ही गर्भवती हुई।

अच्छा हुआ कि मेरी पहली पत्नी मर गयी। अबकी विवाहिता चिरजीवी होकर युगों तक जीवित रहे। कबीर कहते हैं जब छोटी पत्नी आयी तो स्वभावतः बड़ी का सौभाग्य ही समाप्त हो गया। अब तो छोटी ही मेरे साथ है और बड़ी ने दूसरे के साथ विवाह कर लिया।"[1]

पहिली करुपि कुजाति कुलखिनी, साहुरै पेईअै बुरी।
अबकी सरुपि सुजाति सुलखिनी, सहजै उदरि धरी।
भली सरी मुई मेरी पहिली बरी।
जुग जुग जीवउ मेरी अबकी धरी।।
कहु कबीर जब लहुरी आई, बड़ी का सुहागु टरिओ।
लहुरी संग भई अब मेरे, जेठी अउरू धरिओ।।

डॉ. वर्मा का इस पद का अर्थ और उनका स्टेटमेंट ऊपर देख ही लिया गया। अब आइये, इस पर थोड़ा विचार-विवेचन करें। जब कबीर पहले यह कह गये हैं कि 'भली सरी मुई मेरी पहिली धरी' अच्छा हुआ कि मेरी पहली पत्नी मर गयी तब यह कहने का क्या अर्थ है कि 'जेठी अउरू धरिओ' बड़ी ने दूसरे के साथ विवाह कर लिया। मरने के बाद विवाह करती है या विवाह करने के बाद मरती है। पद के अनुसार और स्वयं डॉ. वर्मा के अर्थ के अनुसार तो मरने के बाद विवाह कर रही है। ऐसी करामाती स्त्री तो आज तक सुनायी नहीं पड़ी थी।

डॉ. रामकुमार वर्मा तो आज हैं नहीं जो उत्तर दें। हां, बिना समझे-विचारे जो विद्वान उनकी लकीर पीट रहे हैं उनसे निवेदन है कि कृपया वे निम्न प्रश्नों का उत्तर देने का कष्ट करें—

1. जब कबीर स्वयं हीन जाति के थे और कहते हैं कि हौं तो जाति कमीना, काशी का जुलाहा आदि तब वे किस आधार पर कह रहे हैं कि मेरी पहली पत्नी कुजाति-निम्न जाति की थी? क्या कबीर जाति-पांति मानते थे?

2. कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्ग के अग्रेसर ब्राह्मणों, पंडितों एवं मुल्ला-मौलवियों को फटकारते थे, इसलिए हिन्दू-मुसलमान दोनों के उच्च जाति, वर्ण, वर्ग के लोग कबीर से चिढ़े थे और जिस किसी प्रकार कबीर को अपने रास्ता से हटाने, मार डालने या दंडित करने पर तुले थे, तब उनमें से किसने अपनी लड़की का विवाह कबीर के साथ कर दिया था जिससे कबीर कह रहे हैं कि मेरी दूसरी पत्नी सुजाति बड़ी जाति की है? क्या कबीर के समय में (14वीं-15वीं सदी में) बड़ी जाति के लोग छोटी जाति के लड़कों के साथ अपनी लड़कियों का विवाह करते थे, वह भी कबीर जैसे गरीब-दीन-हीन लड़कों के साथ? जबकि उस समय जाति-पांति की बड़ी कट्टरता थी।

3. क्या कबीर की पहली पत्नी दूसरे पुरुष के साथ विवाह करने के बाद भी कबीर को दुख देती थी, उनसे लड़ती-झगड़ती थी, जिससे उसके मर जाने पर कबीर को शांति मिली और उन्हें संतोष हुआ, जैसा कि डॉ. वर्मा लिखते हैं उसके मरने पर कबीर को संतोष हुआ हो?

4. जिस समय कबीर उक्त पद कह रहे थे उस समय उनकी दोनों पत्नियां जीवित थीं या मर गयी थीं। यदि जीवित थीं तो कबीर यह क्यों कह रहे हैं कि मेरी पहली पत्नी कुरूप, कुजाति, कुलक्षिणी थी और दूसरी सुरूप, सुजाति, सुलक्षिणी थी, जैसा डॉ. वर्मा ने लिखा है। यदि दोनों मर गयी थीं तो कबीर यह क्यों कह रहे हैं कि अब तो छोटी ही मेरे साथ है और बड़ी ने दूसरे के साथ विवाह कर लिया? थी का मतलब क्या होता है वर्तमान या भूत?

5. इस पद के कहते समय स्वयं कबीर की मृत्यु हो गयी थी या वे जीवित थे। यदि मृत्यु हो गयी थी तो इस पद को कह कैसे रहे हैं और जीवित थे तो यह कैसे कह रहे हैं कि 'बड़ी का सुहागु टरिओ'। किसी स्त्री का सुहाग टलने का अर्थ है उसके पति की मृत्यु हो जाना। जब तक पति जीवित है तब तक पत्नी का सुहाग टल नहीं सकता। जब कबीर स्वयं जीवित हैं तब उनकी बड़ी-पहली पत्नी का सुहाग टल कैसे गया? और यदि बड़ी का सुहाग टल गया तो छोटी का भी सुहाग टल

1. कबीर एक अनुशीलन, पृ.37।

जायेगा, तब कबीर कैसे कह रहे हैं कि अब छोटी जुग जुग मेरे साथ रहेगी?

6. कबीर ने दूसरा विवाह कब किया। पहली पत्नी के मर जाने के बाद या उसके जीवित रहते या उसके द्वारा दूसरे पुरुष से विवाह कर लेने के बाद?

7. 'कबीर का रहस्यवाद' नामक अपनी पुस्तक में डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"एक बात और है कबीर ने आत्मा का वर्णन किया है, शरीर का नहीं।...'नख-शिख' अथवा शरीर सौन्दर्य के झमेले में नहीं पड़े।"[1] जब कबीर ने शरीर का वर्णन नहीं किया, वे शरीर-सौन्दर्य के झमेले में नहीं पड़े तब वे कैसे कह रहे हैं कि मेरी पहली पत्नी कुरूपा, कुजाति, कुलक्षणा थी और दूसरी सुरूपा, सुजाति एवं सुलक्षणा? कुरूपा, कुजाति, सुरूपा, सुजाति आत्मा का वर्णन है या शरीर का? डॉ. वर्मा क्या मानते हैं?

डॉ. वर्मा लिखते हैं कि "कबीर की पहली पत्नी कुरूपा, कुजाति एवं कुलक्षणा थी और उसको कबीर के पिता भी बुरी समझते थे।" परंतु कबीर तो अपने एक अन्य पद में कहते हैं कि मेरी पहली पत्नी सदा कुलवंती थी और सास-ससुर को खूब मानती थी तथा देवर-जेठ सबको बड़ी प्यारी थी। आइये पूरा पद देखते हैं—

अबकी घरी मेरी घर करसी, साध संगति ले मोकौं तिरसी।
पहली को घाल्यौ भरमत डोल्यौ, संच कबहूं नहिं पायौ।
अब की घरनि धरी जा दिन थैं सगलों भरम गमायौ।
पहली नारि सदा कुलवंती सासु ससुरा मानैं।
देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिय को मरम न जानैं।
अबकी घरनि धरी जा दिन थैं, पीय सूँ बांन बन्यूँ रे।
कहैं कबीर भाग बपुरी कौ, आइरु राम सुन्यूँ रे।।

(कबीर ग्रंथावली, पद 225)

अर्थ (शाब्दिक) कबीर कहते हैं कि मेरी अबकी पत्नी मेरा घर करेगी और मुझे साधु-संगति में ले जाकर तार देगी। पहली वाली के भरमाने-भटकने से मैं भरमता-भटकता रहा और कभी सुख नहीं पाया, किन्तु अबकी घरनि (पत्नी) को जिस दिन से पकड़ा मेरा सारा भ्रम खो गया। मेरी पहली पत्नी सदा कुलवंती रही है। वह सास-ससुर को बहुत मानती थी, आदर करती थी या सास-ससुर उसे बहुत मानते थे। वह देवर-जेठ सब की प्यारी थी, परंतु वह पति का भेद नहीं जानती थी। अबकी पत्नी को जिस दिन से मैंने पकड़ा है, पिया से (मुझसे) उसकी खूब बानक बन रही है। कबीर कहते हैं कि बेचारी का भाग्य सुंदर है और राम भी आकर उसकी सुन गये हैं।

इसमें भी कबीर की दो पत्नियां स्पष्ट दिख रही हैं और कबीर कह रहे हैं कि पहली वाली के भरमाने से मैं भरमता-भटकता रहा और कभी सुख नहीं पाया। हां, दूसरी पत्नी के आने से मेरा सारा भ्रम दूर हो गया। परंतु डॉ. वर्मा ने इसे अपने संकलन में नहीं लिया है। इससे उनका यह निष्कर्ष गलत हो जाता कि कबीर की पहली पत्नी को कबीर के पिता बुरी समझते थे, जबकि कबीर यहां कह रहे हैं कि मेरी पहली पत्नी कुलवंती है और सास-ससुर को खूब मानती है, या सास-ससुर उसे अच्छी मानते हैं। कबीर एक अनुशीलन पृ.37 में डॉ. वर्मा लिखते हैं कि कबीर अपने परिवार में अपने किसी भाई या बन्धु का उल्लेख नहीं करते। जबकि यहां कबीर अपने छोटे-बड़े भाइयों का उल्लेख कर रहे हैं—देवर जेठ सबनि की प्यारी।

आखिर कबीर की पहली-दूसरी पत्नी का झमेला क्या है? कबीर अपने परिवार का उलझनपूर्ण वर्णन कर अपने श्रोताओं को क्या बताना चाहते थे? वे अपने श्रोताओं-पाठकों को उलझाना क्यों चाहते हैं? वस्तुतः कबीर न तो अपने स्थूल परिवार का वर्णन कर रहे हैं और न वे किसी को उलझाना चाहते हैं। कबीर-वाणी का शाब्दिक अर्थ करके और उसके आधार पर कबीर का एक काल्पनिक परिवार तैयार कर तथाकथित विद्वान उलझन और भ्रम पैदा करने का काम रहे हैं। जो भी कबीर-वाणी का शाब्दिक-अभिधा अर्थ करेगा वह स्वयं भ्रम-उलझन में पड़ेगा और दूसरों को भी भ्रम-उलझन में भटकायेगा। कबीर-वाणी को समुचित ढंग से

1. कबीर का रहस्यवाद, पृ.81

समझने के लिए अभिधा के साथ-साथ लक्षणा और व्यंजना शक्ति को भी समझना होगा। कबीर बाहरी परिवार का नहीं अपितु भीतरी-आंतरिक परिवार का वर्णन करते हैं। जिसे पहली और दूसरी कहते हैं वह कुमति-सुमति, अविद्या-विद्या, माया-भक्ति है और धनिया धन-धान्य सांसारिकता-मोह-माया में डूबी मनोवृत्ति तथा रामजनिया राम में, ज्ञान में रमण करने वाली वृत्ति है। आइये लक्षणा अर्थ में देखते हैं कि कबीर के उक्त पद का अर्थ कितना सुंदर है और मंगलकारी भी—

अबकी घरी (पत्नी सुवृत्ति-सुमति) मेरा घर करेगी अर्थात जीवन को संवारेगी और मुझे साधु-संगति में ले जाकर तार देगी। पहली पत्नी (कुवृत्ति-कुमति) के भरमाने से मैं भरमता-भटकता घुमता रहा, किन्तु कहीं सुख नहीं पाया। लेकिन अबकी सुमति-पत्नी को जिस दिन से धारण किया—अपनाया मेरा सारा भरम दूर हो गया। पहली कुमति-कुवृत्ति-पत्नी कुलवंती थी अर्थात सांसारिक-कुल-कुटुंब के मोह में पड़ी थी, इसलिए सास (माया) और ससुर (अज्ञान) को बड़ी प्यारी थी, उन्हें मानती थी। साथ-साथ देवर (मन) और जेठ (अहंकार) को भी प्रिय थी। (स्वाभाविक है मन और अहंकार को कुमति-कुवृत्ति-अविद्या ही प्रिय लगती है), परंतु वह (कुमति) पति-पीव (जीव, चेतन, आत्मा, परमात्मा) का मर्म-भेद नहीं जानती है कि उसे क्या प्रिय है। अबकी सुमति को जब से मैंने पकड़ा-धारण किया तब से उसकी और पति (जीव) की खूब बानक बन रही है। कबीर कहते हैं कि बेचारी सुमति का भाग्य तो देखो कि राम भी आकर इसकी बात सुन रहे हैं।

जिस पद के आधार पर डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं कि कबीर की दो पत्नियां थीं, जिनमें से पहली कुरूप, कुजाति एवं कुलक्षणा थी और दूसरी सुरूप, सुजाति एवं सुलक्षणा, उसमें डॉ. वर्मा को स्वयं संदेह है। वह पद और उसके प्रारंभ की दो पंक्तियों पर डॉ. वर्मा का अर्थ देखिए—

पहली कुरूप कुजाति कुलक्खनी साहुरै पेईअै बुरी।
अबकी सरूपि सुजाति सुलखनी सहजे उदरि धरी ।।

(मैंने दो विवाह किये) पहली स्त्री (माया) तो कुरूप, कुजात और कुलक्षणी थी, जो मेरे स्वामी के द्वारा भी बुरी समझी गई। दूसरे बार की स्त्री (भक्ति) रूपवती, (सुजाता) और सुलक्षणी है जो सरलता से गर्भवती हुई (जिससे सद्‌गुण आदि उत्पन्न हुए।)[1]

लगता है डॉ. वर्मा स्वयं संदेह में एवं भ्रमित हैं और जो स्वयं संदेह में एवं भ्रमित है वह दूसरों के मन में भी संदेह एवं भ्रम उत्पन्न करेगा। डॉ. वर्मा कैसे भ्रमित हैं इस पर आगे चर्चा होगी। फिलहाल जिन पदों के आधार पर डॉ. वर्मा कबीर की पत्नियों की चर्चा करते हैं उन पदों का आध्यात्मिक अर्थ क्या है, यह देख लें, जिससे स्पष्ट हो जाये कि कबीर अपने श्रोताओं को आध्यात्मिक संदेश दे रहे हैं या अपने परिवार का असंगत पचड़ा सुना रहे हैं और ऐसा सुना कर बताना क्या चाहते हैं। पद और उनका अर्थ देखें—

पहिली कुरूपि कुजाति कुलखनी, साहुरे पेईअै बुरी।
अब की सुरूपि सुजाति सुलखनी, सहजै उदरि धरी ।।
भली सरी मुई मेरी पहिली बरी।
जुगु जुगु जीवउ मेरी अबकी धरी ।।
कहु कबीर जब लहुरी आई, बड़ी का सुहागु टरिओ।
लहुरी संग भई अब मेरे, जेठी अउरु धरिओ ।।

अर्थ—मेरी पहली वाली पत्नी (वृत्ति, माया, अविद्या) कुरूप, कुजात एवं कुलक्षणी थी अर्थात विकारों में डूबी हुई थी और उसे साहू (संत-सज्जन) भी बुरी कहते थे, लेकिन अबकी पीछे वाली (वृत्ति, भक्ति, विद्या) सुरूपा, सुजाति एवं सुलक्षणा है अर्थात वह शुद्ध होकर ज्ञान-साधना में लगकर कल्याणकारिणी बन गयी। अच्छा हुआ मेरी पहली वृत्ति (माया, अविद्या) मर गयी। अब मेरी कामना है कि अबकी वृत्ति (भक्ति, विद्या) जुग-जुग सदा मेरे साथ रहे। कबीर कहते हैं कि जब छोटी (भक्ति, विद्या) आयी तब बड़ी (माया-अविद्या) का सौभाग्य नष्ट हो गया। अब मेरे जीवन में माया-अविद्या के लिए कोई प्रयोजन नहीं रह गया। अब तो लहुरी-छोटी (भक्ति-विद्या) ही मेरे साथ

1. संत कबीर, पृ. 322।

रह रही है और बड़ी (माया-अविद्या) दूसरों के साथ चली गयी।

ध्यान रहे, हर व्यक्ति का मन पहले माया-अविद्या में ही डूबा होता है। उसी के संस्कार मन में रहते हैं और परिणाम दुखद ही होता है। साधु-संगति, सेवा-साधना से बाद में भक्ति-विद्या का प्राकट्य होता है और वह सुखद होती है। अगले पद में भी कबीर इसी का ही वर्णन करते हैं न कि अपनी किसी लौकिक पत्नी का।

मेरी बहुरीआ को धनीआ नाउ।
ले राखिओ राम जनीआ नाउ।
इन्ह मुंडीअन मेरा घरु धुंघरावा।
बिटवहि राम रमऊआ लावा।
कहतु कबीर सुनहु मेरी माई।
इन मुंडीअन मेरी जाति गवाई।।

अर्थ—मेरी बहुरिया (वृत्ति) का नाम धनिया था, परंतु अब मैंने उसका नाम रमजनिया रख लिया है। अर्थात मेरी पहले की वृत्ति धनिया थी—धन-दौलत-सांसारिकता में लिप्त-मगन रहने वाली थी, परंतु अब वह रमजनिया-राम में रमन करने वाली हो गयी है। इन मुंडिया-साधुओं ने मेरे अज्ञान-मोह-माया रूपी घर में ज्ञान की आग लगा दी है। फलस्वरूप अब मेरा बेटा-मन राम में रमण करने लग गया है। कबीर कहते हैं कि हे मेरी माया-माता! इन मुंडिया-साधुओं ने मेरी जाति गंवा दी अर्थात मेरी सांसारिक पहचान मिट गयी (जाति पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि को होई)।

सीधी-सी बात है कि कबीर ने अपनी वाणियों में कहीं भी अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन नहीं किया है। वे आध्यात्मिक बातों-रहस्यों का वर्णन बहुधा रूपकों में करते हैं और रूपक भी प्रायः वही देते हैं जो आम आदमी के जीवन से संबंधित हैं या लोक जीवन में बिखरे पड़े हैं। बड़े-बड़े विद्वान कहलाने वाले भी उनके रूपकों के समझने में लड़खड़ा जाते हैं। वे रूपकों के पीछे छिपे अर्थ को न समझकर शाब्दिक (अभिधा) अर्थ करने लग जाते हैं, जिससे गलत निष्कर्ष निकलना स्वाभाविक है। जो कभी संतों के पास जाकर सत्संग नहीं करते, जिनका आध्यात्मिक साधना से दूर का भी संबंध नहीं है, जो केवल शाब्दिक ज्ञान के आधार पर संतों की वाणियों का अर्थ करने का दावा करते हैं, वे रूपकों का आध्यात्मिक अर्थ कैसे समझ सकते हैं।

डॉ. रामकुमार वर्मा स्वयं लिखते हैं—"आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा ही आत्मा का कुछ परिचय पाया जा सकता है। आध्यात्मिक शक्तियां सभी मनुष्यों में नहीं रह सकतीं। इसलिए सब लोग कबीर की कविता की थाह सफल रूप से कैसे ले सकेंगे। इसमें संदेह है कि कबीर की कल्पना के सारे चित्रों को समझने की शक्ति किसी में आ सकेगी या नहीं। कबीर की 'बानी' पढ़ जाने के बाद यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि कबीर के पास कुछ ऐसे चित्रों का कोष है जिसमें हृदय में उथल-पुथल मचा देने की बड़ी भारी शक्ति है।"[1] डॉ. वर्मा के इस कथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि कम से कम डॉ. वर्मा के पास कबीर के सभी चित्रों को समझने की शक्ति तो नहीं ही थी। अन्यथा वे कबीर द्वारा रूपक में कही गयी वाणियों का शाब्दिक अर्थ करके कबीर का गलत चित्र प्रस्तुत नहीं करते।

डॉ. रामकुमार वर्मा की इस मिथ्या धारणा, कि कबीर की दो पत्नियां थीं, को अनेक विद्वानों ने अस्वीकार कर दिया है। श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव लिखते हैं—"अब यह अपनी रुचि है कि हम ऐसे पदों में आये हुए कुल संबंध सूचक शब्दों का मुख्यार्थ लेकर कबीर की पत्नी के देवर, जेठ, ननद, बाप, सगे भइया (बानी पद 230) आदि का इतिहास ढूंढ निकालने में माथा पच्ची करें या उनके सांकेतिक अर्थ लेकर संगति बैठायें। हम नहीं समझते कि अपने कुलवालों का यह असंगत पचड़ा सुनाने में कबीर का क्या उद्देश्य हो सकता था। हां, सांकेतिक अर्थ से अवश्य उनके भाव स्पष्ट हो जाते हैं। कबीर ने राम को भुलवाने वाली 'बौरी मति" और राम में रमने वाली "सुंदर मति" का उल्लेख अन्यत्र किया भी है।"[2]

---

1. कबीर का रहस्यवाद, पृ.9-10।
2. कबीर साहित्य का अध्ययन, पृ.341, संस्करण वि.सं. 2008।

डॉ. युगेश्वर लिखते हैं—"कबीर की दो पत्नियों की कल्पना और उस पर यह पहली-दूसरी का अनुमान हिन्दी कविता के अध्ययन का अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार की कल्पनाएं बिलकुल छिछिली और सतही हैं। आश्चर्य तब होता है जब यह प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा कही जाती है। इसमें पहली बात तो यह कि कबीर रूपकों में बात करते हैं। उन्होंने कहीं भी अपनी पत्नी का नाम लोई नहीं कहा है। हां, धनिया अवश्य कहा है। किन्तु धनिया और रमजनिया केवल तुक के लिए है। ध्यान रखना होगा कि कबीर अपने को भक्त और भगवान दोनों मानते हैं। इसलिए स्त्री मात्र का पर्याय 'धन्या' का तद्भव 'धनिया' अपनी पत्नी का नाम बताते हैं। 'धनिया' और 'रमजनिया' केवल प्रतीक हैं। यहां न कोई उनकी पहली पत्नी थी और न कोई दूसरी। जिसे वे पहली कहते हैं वह माया है और दूसरी है भक्ति।"[1]

कबीर ने जिन रूपकों का प्रयोग किया है यदि उनका लक्षणा और व्यंजना में अर्थ न कर अभिधा (शाब्दिक) अर्थ ही किया जायेगा तब तो कबीर की कविताओं का कोई महत्त्व ही नहीं रह जायेगा। एक ओर तो डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर की वाणियों के आधार पर कबीर के पारिवारिक कलह, असफल जीवन का वर्णन करते हैं और दूसरी ओर उन्हें रहस्यवादी कवि-संत भी मानते हैं। पता नहीं कबीर के पारिवारिक कलह, पत्नी-बच्चों के वर्णन में डॉ. वर्मा को कौन-सा रहस्य दिखाई पड़ता है। जो कबीर अपने हाथों अपना घर फूंककर बेहदी खुले मैदान में आ गये थे वे कबीर अपने माता-पिता, पत्नी-बच्चों का रोना क्यो रोंयेंगे। या तो कबीर के सारे रूपकों का अभिधा अर्थ करके सब में उनका जीवन चरित्र खोजना होगा या सबका लक्षणा अर्थ करके आध्यात्मिक वर्णन करना होगा। यह कहां का न्याय है कि अपनी मर्जी के अनुसार कहीं अभिधा अर्थ करके कबीर के पारिवारिक पचड़े का वर्णन करना और कहीं लक्षणा-व्यंजना से अर्थ करके आध्यात्मिक वर्णन करने लग जाना।

यदि रूपकों का अभिधा अर्थ करके कबीर के माता-पिता, पत्नी-बच्चे आदि का वर्णन करना हो और उनके द्वारा चित्रित सामान्य लोगों की मनोदशा का आरोपण उनके ही जीवन में कर यह निष्कर्ष निकालना हो कि कबीर का पारिवारिक जीवन बड़ा अभावग्रस्त, कलहपूर्ण और दुखद था और यह भी कि कबीर का जीवन पश्चाताप करते हुए व्यतीत हुआ तो पहले यह निर्णय करना होगा कि कबीर हैं क्या—पुरुष या स्त्री। यह निर्णय हो जाने के बाद ही उनके जीवन का सही चित्रांकन किया जा सकेगा।

डॉ. रामकुमार वर्मा और उनकी लकीर पीटने वाले विद्वान "मेरी बहुरिया को धनीआ नाउ। लै राखियो रामजनीआ नाउ।" तथा "पहिली करूपि कुजाति कुलखिनी, अबकी सरूपि सुजाति सुलखनी" आदि के आधार पर यह अर्थ करते हैं कि कबीर इन पंक्तियों में अपनी पत्नी या पत्नियों का वर्णन करते हैं तो वे उनके निम्न पद या पदांशों का क्या अर्थ करेंगे—

माई मैं दूनों कुल उजियारी।
सासु ननद पटिया मिलि बँधलो, भसुरहि परलों गारी।
जारों माँग मैं तासु नारि की, जिन सरवर रचल धमारी।
जना पाँच कोखिया मिलि रखलों, और दुई औ चारी।
पार परोसिनि करों कलेवा, संगहिं बुधि महतारी।
सहजे बपुरे सेज बिछावल, सुतलिऊ मैं पाँव पसारी।

× × ×

ननदी गे तैं विषम सोहागिनि, तैं निन्दले संसारा गे।
आवत देखि मैं एक संग सूती, तैं औ खसम हमारा गे।
मोरे बाप के दुइ मेहररुआ, मैं अरु मोर जेठानी गे।
जब हम रहलि रसिक के जग में, तबहि बात जग जानी गे।
माई मोरि मुवलि पिता के संगे, सरा रचि मुवल संगाती गे।
आपुहि मुवलि और ले मुवली, लोग कुटुम संग साथी गे।

× × ×

माई मोर मनुसा अतिरे सुजान, धन्धा कुटि-कुटि करत बिहान।
बड़ी भोर उठि आँगन बादु, बड़ो खाँच ले गोबर काढ़ु।
बासी भात मनुसे लिहल खाय, बड़ो घैल लिये पानी को जाय।
अपने सैयाँ की मैं बांधूँगी पाट, लै बेचूँगी हाटो हाट।
कहहिं कबीर ये हरि के काज, जोइया के ढिग रहि कौनि लाज।।

× × ×

1. कबीर समग्र, पृ. 16।

बाबा मोर बियाह कराव, अच्छा बरहिं तकाव।
जौं लौं अच्छा बर न मिले, तौं लौं तुमहिं बिहाव।
सांई के संग सासुर आई।
संग न सूति स्वाद नहिं मानी, गयो जोबन सपने की नांई।
नाना रूप परी मन भाँवरि, गाँठि जोरि भाई पतियाई।
अर्घा दै लै चली सुवासिनि, चौके राँड़ भई संग साँई।
भयो विवाह चली बिनु दुलहा, बाट जात समधी समुझाई।
कहैं कबीर हम गौने जैबै, तरब कन्थ लै तूर बजैबै।

× × ×

नैहरवा हमका न भावै।
सांई की नगरी परम अति पावन, जहाँ कोई आवै न जावै।
केहि विधि ससुरे जाऊँ मोरी सजनी, बिरहा जोर जनावै।

× × ×

दुलहिनी गावहु मंगलाचार, मोरे घर आये राजाराम भ्रतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहौं, मैं जोबन मदमाती।
कहैं कबीर हम ब्याह चले हैं, पुरुष एक अविनाशी।

× × ×

मोरे सैंया निकरिगौ मैं न लरी।
ना मैं बोली न मैं चाली, ओढ़ी चुनरिया परी रही।
हमरे संग की सात सहेली, न जाने कुछ उनसे कही।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, ऐसी ब्याही से क्वांरी भली।

× × ×

उठो री सखी मोरि मांग संवारो, दुलहा मोसे रूठल हो।

कबीर-वाणी में इन जैसे और बहुत-से पद या पदांश हैं, जिनका अभिधा अर्थ करने पर यही मानना पड़ेगा कि कबीर पुरुष न होकर स्त्री हैं और जब वे पुरुष न होकर स्त्री हैं तब उनकी पत्नी या पत्नियां होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तब तो फिर उनके पति की खोज करना होगा। पहले यह निर्धारित कर लिया जाये कि कबीर पुरुष हैं या स्त्री तब उनकी पत्नी या पति का वर्णन करना प्रासंगिक होगा। साफ है डॉ. रामकुमार वर्मा या उनकी लकीर पर चलने वाले विद्वान इन या इन जैसे पदों-पदांशों का आध्यात्मिक अर्थ करना चाहेंगे और करते भी हैं। जब आप इन पदों-पदांशों का आध्यात्मिक अर्थ करेंगे तब उन पदों का आध्यात्मिक अर्थ क्यों नहीं करते जिनके आधार पर कबीर को विवाहित बताकर उनकी एक या दो पत्नी बताने का दुष्प्रयास करते हैं।

क्रमशः

मौत का मातम

रचयिता—श्री प्यारे लाल साहू

मौत तू कितनी बेरहम
नहीं तेरे दिल में जरा भी रहम
तेरे क्रूर पंजों से कोई बच न सका
बड़े से बड़ा वीर भी, तेरे सामने टिक न सका
देव दानव मानव
जोगी जती संन्यासी
धनवान बलवान गुणवान
जिन्होंने समझा,
खुद को खुदा और भगवान
चाहा अमरता का वरदान
हारे करके लाखों जतन
हो गये अंत में दफन
तू कब, कहां, कैसे आयेगी
कोई ज्योतिषी जान न सका
तेरे अगणित रूप हैं,
कोई तुझे पहिचान न सका
कभी आती है तू बीमारी बनकर
कभी बहुत तड़पाती है
कभी अनायास ही आ जाती है

चाहे निर्धन हो या धनवान
चाहे निर्बल हो या बलवान
चाहे मूरख हो या मतिवान
चाहे साधु या शैतान
जहां सबकी हो सम शान
उसे कहते हैं मरघट या शमशान

इंसान प्रति पल मर रहा है
फिर भी मरने से डर रहा है
जीते जी होगी बड़ी तेरी धाक
पर अंत में काया होगी तेरी जल कर खाक
जिस दिन आयेगा मौत का परवाना
नहीं चलेगा तेरा कोई बहाना
अपने ऊंचे आशियानों पर मत इतराना
केवल दो गज धरती होगी तेरा ठिकाना
इस धरा का इसी धरा पर सब कुछ धरा रह जाएगा
अपने साथ तू कुछ भी नहीं ले पाएगा
तू लाख कमा ले सोने चांदी या फिर हीरे मोती
पर 'प्यारे' कफन में जेब नहीं होती।